

॥ तस्य वाचकः पणवः ॥

श्रीश्वर की पहचान

-योगभिक्षु

ईश्वर की पहचान

अर्थात्

(तस्य वाचकः प्रणवः)

पातंजल योगदर्शन - समाधि पाद्

सूत्र २४ से २९

और

दूसरे मौलिक और प्रेरणादायी लेख

श्रीधरारायण ग्रंथावलि पुष्प-२२

— योगभिक्षु

० प्रकाशक और प्राप्तिस्थान

ओम्गुरु प्रेम समर्पण ध्यानभिक्षु परिवार की तरफ से

डॉ. सद्गुरु समर्पणभिक्षु

३/५ १/५ 'पलियड नगर सोसायटी'

सेंट जेवियर्स हाईस्कूल रोड,

नारणपुरा, अहमदाबाद - ३८००१३.

सर्व हक्क प्रकाशक के

गुजराती पुस्तिका "ईश्वर कोने कही शकाय ?" का हिन्दी अनुवाद

० अनुवादक : श्री मणिभाई पटेल

० प्रथम आवृत्ति : मार्च, १९८७

० प्रत : १०००

० मूल्य रू. ११-००

० मूल्यपृष्ठ : श्री किशोर मकवाणा

० मुद्रक : ब्रेला टाईप सेटींग वर्कस, घीकांटा रोड, अहमदाबाद

प्रासंगिक

पातंजल योगदर्शन के समाधिपाद पर प. पू. गुरुदेव श्री योगभिक्षुजी की 'मुक्ता' नामक टीका (गुजराती भाषा में) से सूत्र २४ से २९ तक का भाग हिंदी में अनुदित करके इसमें लिया गया है। "मुक्ता" में पूरा समाधिपाद है, परन्तु जिन्हें केवल ओम् और ईश्वर के सम्बन्ध में पढ़ने की इच्छा हो उनकी सुविधा के लिए यह प्रयत्न किया गया है।

'प्रणवबोध षट्सूत्री' भी इसमें समाविष्ट कर दी गई है। इसमें पीछे के चार लेख बढ़ा दिये गये हैं जो उपयोगी साबित होंगे।

आशा है कि तत्त्व के जिज्ञासुगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

सब गुरुप्रेमियों की ओर से
जय गुरुदेव
— भरत देसाई



अनुक्रम

(१) जिनमें कलेश आदि नहीं वे ही एक मात्र ईश्वर हैं ।	७
(२) व्यवस्था है इसलिए व्यवस्थापक भी जरूर हैं ।	९
(३) नीम के बीजमें से नीमका ही पेड़ होता है ।	९
(४) सभी शास्त्र विधि-निषेध दर्शक हैं ।	१०
(५) ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अजर-अमर और आदि गुरु हैं ।	१३
(६) शरीरधारी सभी काल के वश में हैं ।	१५
(७) ईश्वर का नाम प्रणव-ओम् है ।	१६
(८) ओम् की व्यावहारिक समझ ।	१७
(९) दीर्घ प्रणवोच्चार की महत्ता ।	१९
(१०) सुषुम्णा-केन्द्रो की जागृति ।	२०
(११) कुंडलिनी की जागृति अर्थात् अनामत शक्तिका उपयोग ।	२०
(१२) ओम् सर्व-संप्रदाय मान्य ।	२१
(१३) जहाँ क्रिया वहाँ ध्वनि	२१
(१४) ओम्, समस्त सत्-साहित्य का संक्षिप्त स्वरूप है ।	२२
(१५) ओम्-परिवार नाम क्यों ?	२५
(१६) बिन्दु गोल होना चाहिए ।	२८
(१७) बिना बिन्दु के मनुष्य की स्थिति	२८
(१८) त्रिशूल का मानी ?	२९
(१९) 'उमा' और 'लेडआ' का अर्थ क्या ?	३०
(२०) संपुटित राममंत्र की महत्ता ।	३२

(२१) अखंड-सौभाग्य के चिह्न का मतलब क्या ?	३३
(२२) ज्ञानेश्वर का दृष्टांत ।	३५
(२३) ओम् के सार्थक जप की महत्ता ।	३६
(२४) ओम् समझने के लिए बम्बई का दृष्टांत ।	४०
(२५) तीन बार ओम् बोलने का मतलब ।	४१
(२६) काम आदि अचूक देनेवाला मंत्र "ओम्"	४२
(२७) ओम् की आकृति नैसर्गिक है ।	४५
(२८) अनाहत नाद आदि ध्वनि का बीज है ।	४९
(२९) परमात्मा अति सूक्ष्म होने से सर्वव्यापक है ।	५१
(३०) गुरुअष्टक	५२



अश्वर-नाम-महिमा

(योगदर्शन के अश्वर-लक्षण-दर्शक सूत्रों का भावार्थ)

मुनि पतंजलिने “योगदर्शन” में,
“अश्वर” की दी जो पहचान है;
वनी वह पद्य यहाँ गुरुकृपा से,
“सरल समझ के उद्देश्य से ।

कर्म-कलेश-वासना और कर्मफल, अश्वर में नहीं होते हैं;
व्यापक हैं वे सर्व-सभी में, ओम्-प्रणव नाम उनका है ।
अश्वर संपूर्ण है सर्वज्ञ, कोअी नहीं उनके समान है;
है आधीन काल भी उनके, ओम्-प्रणव नाम उनका है ।
भूत, भविष्य और वर्तमान के, सिद्धों के भी सिद्ध वे;
गुरुओं के भी है गुरुदेव, ओम्-प्रणव नाम उनका है ।
गुरुचरण की शरण गया जो, गया उसका “मैं-मेरा” रे;
बंधन काटे भव-भव के वे, ओम्-प्रणव नाम उनका है ।
रटेंगे-भजेंगे “ओम् गुरु ओम्” को, पार जीवन को लगा देंगे;
कहते पुकार के ‘शशी’ के गुरुदेव, ओम्-प्रणव नाम उनका है ।

अश्वर की अिस पहचान का नित्य करे जो पाठ;
रटे प्रणव को प्रेम से भर, सत्य समझ के साथ;
वह समाधान पा जायेगा, निश्चित है यह बात;
“योगभिक्षु” कहे धन्य होंगे, उसके मात और तात ।

प्रणव-जप-महात्म्य

हटेंगे अंतराय, कटेंगे विक्षेप; फटेंगे पर्दे, दर्शन के;
डटेंगे ‘योगभिक्षु’, डके की चोट कहुँ; रटेंगे प्रणव, न हटेंगे ।

प्रणव-अष्टक

प्रणव से पढो, प्रणव से बढो, प्रणव से चढो स्वर्ग-आसमान;
प्रणव से तोढो भ्रमजालों को; प्रणव है कल्पवृक्ष समान ।
प्रणव ही बोलो, प्रणव ही जोडो; प्राण-प्रणव है अेक समान;
प्रणव के बिन प्रलय पलमें; ‘योगभिक्षु’ हो जा सावधान ।
प्रणव छोडके पढा ‘क-ख-ग’, क्या पाया कुछ सोच-विचार;
प्रणव छोडके रटा ‘मैं-मेरा’, खोया जन्म महा-मूल्यवान ।
प्रणव-प्रेम में हो मस्ताना, प्रणव-ज्ञान का दे कुछ दान;
प्रणव-ज्ञान के दाता के बिन, है ‘योगभिक्षु’ भिक्षुक समान ।



क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से विमुक्त ऐसा विशेष चेतन (वेही अेक मात्र) अीश्वर हैं। अीश्वर संपूर्ण सर्वज्ञ हैं। अीश्वर त्रिकालिन गुरुओं के भी गुरु हैं; काल से अुन का छेदन-भेदन नहीं हो सकता। अीश्वर का नाम प्रणव (ओम्=ॐ) है। ओम् का मार्यक जप करने से आत्मसाक्षात्कार होता है और अन्तरायों का अभाव हो जाता है।

ॐ....

ॐ....

ॐ....

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥२४॥

भावार्थ-

क्लेश, कर्म, कर्मफल एवं वासनाओं से असंबद्ध विशेष चेतन ईश्वर हैं ।

विस्तार-

ईश्वर कैसे हैं ? क्लेश, कर्म, कर्मफल और वासनाओं से अपरामृष्टः अर्थात् असंबद्ध । ये क्लेशादि उन्हें नहीं लग सकते । उनमें विशेषता क्या है ? उनमें क्लेश-कर्मादि नहीं, वे इन सबसे असंबद्ध एवं असंग हैं ।

अपरोक्त विशेषताएँ जिनमें हैं वे पुरुषविशेष ईश्वर हैं । यदि ऊपर दी गई चार विशेषताओं को छोड़ दें और केवल “पुरुषविशेष ईश्वरः” इतना ही लिया जाय तो विशेष प्रकार के पुरुष को-नर को ईश्वर कहना पड़ेगा; केवल इतना ही लेने से तो विशेष प्रकार के पुरुष को ईश्वर मान्य करना पड़ेगा । सामान्य नरनारी जो कुछ कर रहे हैं, सामान्य नरनारियों में, सामान्य पुरुषों में जो कुछ साधारणपन है, उसकी अपेक्षा जिनमें असाधारणपन दिखाई दे वे ईश्वर ठहरे - वे ईश्वर निश्चित हुए, क्योंकि उनमें अमुक प्रकार की विशेषता है । ऐसी विशेषता तो बहुतों में हो सकती है । जैसे कि कोई आकर हमें यह कहे, “यह सूत्र कहता है ‘पुरुषविशेष ईश्वरः’; सामान्य मनुष्यों में किसीके बालदाढ़ी नहीं, कोई पंचकेश नहीं रखता और मैं तो पंचकेश रखता हूँ । औरों की अपेक्षा मुझमें यह विशेषता है, इसलिए मुझे ईश्वर मानो, मैं ईश्वर हूँ । और किसीके बालदाढ़ी नहीं और मेरे हैं तो औरों की अपेक्षा मुझमें यह विशेषता खरी न ? इसलिए मैं ईश्वर, मुझे पूजा ।” तब हम यह सोचेंगे कि हाँ, इस सूत्र में इस तरह कहा तो है और यह आदमी

कहता है कि मुझमें बालदाढ़ी की विशेषता है; तो, वह भी विशेषता है सही। तो फिर इस आदमी को ईश्वर मानना चाहिए। परन्तु जरा अधिक गौर करने पर यह कथन गलत साबित होगा। मेरे गाँव के मंदिर के पूजारी भी बालदाढ़ी रखते हैं। खाकी साधुओं की एक जमात आयी थी, उन सबके बालदाढ़ी थे। इस तरह तो वे सभी ईश्वर ठहरते हैं। परन्तु ईश्वर तो एक हैं, अधिक तो ईश्वर हैं नहीं। यदि इस बालदाढ़ी को विशेषता मानें और यह विशेषता जिसमें हो उसे ईश्वर मान लिया जाय तो वे सब ईश्वर ठहरते हैं। यह बालदाढ़ी की विशेषता तो बहुतों में है। भले यह सबमें नहीं, परन्तु अनेक में है इसलिए अनेक ईश्वर मानने पड़ेगे। ईश्वर अनेक तो हैं नहीं, ईश्वर तो एक हैं। अगर ईश्वर अनेक हों तो जगत में अव्यवस्था फैल जाय। एक ईश्वर सूर्यनारायण से कहेगा कि सुबह सात बजे निकला करो, तो दूसरा ईश्वर कहेगा कि नहीं आठ बजे; तीसरा कहेगा कि इतने समय पर अस्त हुआ करो, तो चौथा कहेगा कि नहीं, इतने समय पर। पाँचवाँ कहेगा कि तुममें जो उष्णता है वह नहीं चाहिए, ठंडक चाहिए, तो दसवाँ कहेगा कि दोनों चाहिए। फिर तो इस जगत में—इन अनेक ईश्वरों के जगत में अव्यवस्था की भरमार हो जायगी! जगत में ऐसी अव्यवस्था क्या कहीं दिखाई देती है? किसी जगह दिखाई पड़ती है क्या?

जगत कितना सुव्यवस्थित, कितना सुंदर है! पशु-पक्षी-मनुष्य, पेड़-पौधे, पत्थर-पहाड़, नदी-नाले, सूर्य-चंद्र-सितारे-आसमान जहाँ देखते हैं सब क्रमबद्ध। गर्मियों में ताप, जाड़ों में ठंड, बरसात में मेह, ऋतुओं का अपने क्रम से चलना, सभी पदार्थ सुव्यवस्थित एवं सुंदर; सभी सत्यम् शिवम् सुन्दरम्। विश्व में कितनी सुव्यवस्था ही सुव्यवस्था है! यदि एक घर में, (मुखिया को अंग्रेजी में क्या कहा जाता है? हेड ऑफ फेमिली? हाँ भाई, मुझे ता अंग्रेजी नहीं आती। अच्छा, तो हम संचालक ही कहें) यदि एक परिवार में दो-तीन संचालक हों तो उसमें व्यवस्था नहीं टिक सकेगी। जिसमें एक ही हो वह परिवार सुचारु रूप से चलेगा, परन्तु तब, जब वह एक जो

कहे उसी तरह सब चलें । यह तो केवल एक ही परिवार की बात हुई, परन्तु इतना बहुत विशाल—विराट जगत है फिर भी कितना सुव्यवस्थित चल रहा है ! तो यह व्यवस्था किस तरह हो सके इसकी अगर हम कल्पना करें तो तुरन्त ही ईश्वर का प्रमाण मिल जाय; ईश्वर की सिद्धि हो जाएगी कि हाँ, ईश्वर है । हम यद्यपि उसे देख नहीं पाते परन्तु इस तरीके से उसकी हस्ती जरूर महसूस कर सकते हैं । किस तरह ? कि यदि जगत में इतनी सुन्दर व्यवस्था है तो इस व्यवस्था का कोई न कोई व्यवस्थापक जरूर है । यदि कुछ कार्य हो रहा है तो उसका कारण अवश्य कोई न कोई होना ही चाहिए । स्त्रियाँ यानी ऐसी ही, पुरुष यानी ऐसे ही; यह जो नियम कि चिड़ी तो ऐसी ही होती है, चिड़ा ऐसा ही; तोता ऐसा और मैना ऐसी; नर ऐसा ही और मादा ऐसी ही । नर तोता के गले काला कंठा होता है । किसी नर तोते के गले काला कंठा हो और किसीके यह न हो ऐसा नहीं । सबके समान चिह्न । इस तरह की जो व्यवस्था है इसका करनेवाला है कौन ? यदि व्यवस्था है तो व्यवस्थापक अवश्य है । ऐसे, इस प्रकार ईश्वर का प्रमाण हम पा सकते हैं ।

यदि हम नीम का बीज बोते हैं तो नीम ही होता है, और थूहर बोते हैं तब थूहर होता है; आम की गुठली बोने पर आम ही उगेगा । यह कौन करता है ? गुठली बोने पर आम ही हुआ, बबूल क्यों नहीं ? उसमें से थूहर क्यों न निकल आया ? जिसका बीज था, उसमें से उसका पेड़ हुआ । यह सब व्यवस्था करनेवाला कौन है ?

सत्कर्म किया जाता है तो सुख मिलता है और असत्कर्म करते हैं तो दुःख पाते हैं । यह सब व्यवस्था किससे की जाती है ? इसका कोई न कोई व्यवस्थापक है । उसे हम जी चाहे सो नाम दें—ईश्वर कहे कि परमात्मा; परम सत्ता कहें कि परम तत्त्व; चैतन्य कहें कि प्रकृति; नियति कहें या कुदरत—निसर्ग; जो भी उचित जँचे सो कहें परन्तु उन्हें निःशंक मानना पड़ेगा । एक ऐसे तत्त्व को मान्य

रखना ही पड़ेगा कि जिसके द्वारा यह व्यवस्था चल रही है । यदि नहीं मानेंगे तो उसका क्या विगड़नेवाला है ? अगर मानेंगे तो समाधान मिलेगा और समाधान से सुख एवं शान्ति पाएँगे और बहुत-से प्रश्नों एवं शंकाओं का निरसन हो जाएगा । उस तत्त्व की सावित्री हमने किस तरह पाई ? इस तरह—कि जगत में जो व्यवस्था जारी है वह बिना व्यवस्थापक नहीं हो सकती । अन्यथा कोई आम बोएगा और उसमें से बबूल निकल आएगा । तो फिर कोई आम काहे बोएगा ? यदि कोई पुण्य-कर्म करे और उसका फल वह दुःख ही पावे तो वह किसलिए पुण्यकर्म करेगा ? फिर तो 'जो जैसा करेगा वह वैसा पाएगा' यह जो कर्म का सिद्धान्त है, जिसकी बात हर एक शास्त्र में प्रतिपादित है वह निकम्मी हो जाय । शास्त्र सब किन बातों से भरपूर हैं ? 'विधि' और 'निषेधों' से । शास्त्रों में अधिकतर वर्णन किस विषय का है ? 'विधि' एवं 'निषेध' का । विधि अर्थात् आदमी को अमुक प्रकार के कर्म करने चाहिएँ और अमुक ढंग का चाल-चलन रखना चाहिए; तो उसे सुख मिलता है । इसका नाम विधि । और निषेध अर्थात् यों नहीं करना चाहिए—वों नहीं करना चाहिए; क्योंकि इससे दुःख मिलता है । इसका नाम निषेध ।

यदि विश्व में ऐसी अव्यवस्था चले कि आम बोए और बबूल उगे तो फिर कर्म का सिद्धान्त रहा कहाँ ? फिर तो सब शास्त्र नाबूढ़ हो जायँ । क्योंकि विधि और निषेध रहेंगे नहीं । विधि का पालन और निषेध का निषेध कोई काहे करेगा ? जिन्हें निषिद्ध माने गये हैं उन कर्मों को क्यों छोड़ देगा ? उन्हें भी करेगा । जिस विधि का पालन करना चाहिए उसका पालन क्यों करेगा ? यदि जी चाहे त्यों बरता जाय और फिर भी सुख मिलता हो; बुरे कर्म करने पर भी शान्ति मिलती हो, तो फिर कोई अच्छे कर्म करेगा ही क्यों ? इस प्रकार से तो विधि और निषेध का खंडन हो जाएगा और विधि एवं निषेध का खंडन होने से सब शास्त्रों का खंडन हो जाएगा । क्योंकि सभी शास्त्र विधि-निषेध के दर्शक हैं ।

तो, बात कर्मों के फलों की चल रही थी कि जो जैसा कर्म

करेगा उसे वैसे फल की प्राप्ति होगी । किसके द्वारा होगी ? यह जो एक ईश्वर - एक ऐसा तत्त्व जो सब व्यवस्था संभाल रहा है उसके द्वारा । वह तत्त्व एक है, वे ईश्वर एक हैं, अनेक नहीं । यह सिद्ध करने के लिए इस बात का इतना लम्बा विस्तार किया गया । शास्त्रों, विधि-निषेधों, कर्मों, उनके सिद्धान्त, तोता-मैना की बात, और व्यवस्था इत्यादि बातों का बहुत विस्तार किया गया । क्यों ? यह समझाने के लिए कि ईश्वर एक हैं, अनेक नहीं । लेकिन कोई ऐसा व्यक्ति हो कि जो ऐसी विशेषता बताए कि मेरे छः उँगलियाँ हैं, आप सबके तो पाँच हैं । तो मुझमें यह विशेषता हुई इसलिए मैं ईश्वर । परन्तु एक हाथ की छः उँगलियाँवाले और भी निकल आँगे और वह भी हर एक कहेगा कि मैं भी ईश्वर । फिर तो दो-तीन-चार-अनेक । ईश्वर अनेक नहीं होते । अभी हमने सिद्धान्त से तय किया था कि ईश्वर एक हैं । यह किस सिद्धान्त से किया था ? इस व्यवस्था द्वारा, कि एक ही प्रकार की व्यवस्था सर्वत्र फैली हुई है; यहाँ तेलनार गाँव में, केदारेश्वर में, अहमदाबाद में, हिन्दुस्तान में, अमरिका में, रशिया में, सर्वत्र । सब का लहू लाल ही है, किसी मनुष्य या पशु-पक्षी का लहू हरा-पीला नहीं । इस प्रकार एक ही व्यवस्था फैली है । इससे यह निश्चय होता है कि व्यवस्थापक इसका एक ही है । सब जगह एक ही व्यवस्था जारी है । चाहे भारत में, चाहे भारत के बाहर; चाहे घर में, चाहे घर के बाहर; चाहे मंदिर में, चाहे मंदिर के बाहर सर्वत्र इस प्रकार उसी तत्त्व का राज्य-साम्राज्य है । वहाँ सर्वत्र एक ही व्यवस्था विद्यमान है । इसलिए इस व्यवस्था का व्यवस्थापक एक ही है । इस तरह उपरोक्त स्थूल रीति से यदि कोई अपने को ईश्वर सिद्ध कर दे तो वह ईश्वर साबित नहीं होता । परन्तु यहाँ तो हमें योग के सूत्रों के द्वारा कसौटी करनी है कि कोई अपने को अन्य रीत से ईश्वर कहता चला आये तो वह ईश्वर नहीं है । क्योंकि योगसूत्र क्या कह रहा है ? वास्तव में ईश्वर में क्या होना चाहिए ? क्लेश नहीं होना चाहिए । जो भी ईश्वर बन बैठे हैं, अपने को ईश्वर बता रहे हैं, तो यह देखें कि उनमें क्लेश है ?

यदि हाँ, तो इस सूत्र के अनुसार वे ईश्वर नहीं। सूत्र के मुताबिक तो ईश्वर में क्लेश नहीं होना चाहिए। कदाचित् कोई ऐसा भी दिखाई दे कि उसमें क्लेश न भी हो। वह यह कहे कि मुझमें क्लेश नहीं तो मैं ईश्वर सचमुच ठहरा या नहीं? इस परिस्थिति में हम इस सूत्र को फिर से देखें—समझे। सूत्र में क्या कहा है? ईश्वर में क्लेश भी नहीं और कर्म भी। परन्तु इस व्यक्ति को तो सुबह से शाम तक कर्म करने पड़ते हैं। यदि यह कर्म न करे तो नहीं जी सकेगा। यह कर्म के आधार से जीवन निभा रहा है। इसलिए यह ईश्वर नहीं। ईश्वर में क्लेश, कर्म कुछ नहीं और इस व्यक्ति में तो कर्म हैं। परन्तु कोई शायद ऐसा मिल जाय कि जिसमें क्लेश—कर्म एक भी न हो तो कर्म का फल तो हो ही नहीं सकता। चाकी बची वासना की बात। इन चारों रीतों से ईश्वर की कसौटी की जानी चाहिए। हम जिस जगत में जी रहे हैं इसमें यदि कोई अपने को ईश्वर; भगवान या परमात्मा कहता—कहलाता हो तो पातंजल योगदर्शन के सूत्रों के इस खुलासे पर उसे कस के देख लेना चाहिए। इस कसौटी में अर्थात् इस स्पष्टीकरण में जो खरा न उतरे वह ईश्वर नहीं। ईश्वर तो उससे भिन्न हैं। इसलिए उन ईश्वर की पहचान इन सूत्रों द्वारा कराई कि ईश्वर में क्या क्या नहीं। ये चार बातें उनमें नहीं। शायद कोई ऐसा फूट पड़े और कहे कि ये चारों मुझमें नहीं तो मैं ईश्वर सही कि नहीं? नहीं, फिर भी नहीं। क्योंकि आनेवाला सूत्र अन्य कुछ कह रहा है, कुछ अधिक कह रहा है, अधिक खुलासा एवं स्पष्टीकरण कर रहा है। वह क्या कह रहा है?

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

भावार्थ—

उस (ईश्वर) में संपूर्ण सर्वज्ञता होती है।

विस्तार—

ऊपर जो जो विशेषताओं का निर्देश किया उनके सिवा भी एक

विशेषता (ईश्वर में) है। उनमें संपूर्ण सर्वज्ञता है, सर्वज्ञता इतनी कि जितनी भी है उतनी पूरी की पूरी। ईश्वर में इतनी सर्वज्ञता है कि इससे अधिक सर्वज्ञता हो ही नहीं सकती। वे सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब कुछ जानने वाले हैं। आम की गुठली में से आम ही होता है, ववूल नहीं; शुभ कर्म से सुख ही मिलता है, पापकर्म से दुःख ही मिलता है। यह सभी कैसे हो रहा है ? क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ हैं, और सब कुछ जानते हैं। सब कुछ वे कैसे जानते हैं ? वे सर्वज्ञ हैं इसलिए। जो कुछ कहीं भी हो रहा है, त्रिकाल में भी जो कुछ होता है, सब उन्हें मालूम हो जाता है, क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं। ईश्वर सर्वज्ञ हैं क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं। ईश्वर सर्वज्ञ किस कारण हैं ? सर्वव्यापकता के कारण। ईश्वर सर्वव्यापक भी हैं, सर्वत्र हैं। सर्वव्यापक अर्थात् प्रत्येक स्थान में वे हैं और इसलिए जहाँ भी और जो कुछ भी हो रहा है वे जानते हैं। वे सर्वव्यापक हैं इसलिए सब जगह हैं। इससे जहाँ भी अच्छा या बुरा इत्यादि हो रहा है वह सब जानते हैं। कहा गया है कि—

किया जाये पाप चाहे जमीन के अंदर, तहखाने में छिपकर।

छिपा नहीं रह सकता वह भी जगकर्ता से, वहाँ भी वे मौजूद हैं ॥

चाहे जमीन में घुसकर या आसमान में जा कर या समंदर में छिपकर, कहीं भी, किसी भी तरह, चाहे कितने भी चौकन्ने रहकर हम पाप करें या पुण्य; जानवृझकर करें या अनजाने करें; उन सब कर्मों के फल हमें उसी तरह मिलते हैं। वे किस कारण मिलते हैं ? ईश्वर सर्वव्यापक हैं इसलिए। हम चाहे पाताल में प्रविष्ट हो जायँ और खोटा-खरा कर्म कर लें तो उसका भी पता ईश्वर को लग जाता है। क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक हैं। वे पाताल में भी हैं, मंदिर में भी; गाँव में भी हैं और जंगल में भी। सर्वव्यापक होने के कारण ईश्वर अणु-अणु में हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ, जो जो कुछ भी होता है उसकी खबर उन्हें हो जाती है। इसी वजह अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल उनकी तरफ से मिलता

रहता है । हम चाहे कितने ही छिपकर अच्छे या बुरे कर्म करें तो भी उन सब के फल तदनुरूप मिला करते हैं, क्योंकि हम जहाँ भी कर्म करें वहाँ वे हैं । वहाँ इसलिए हैं कि वे सर्वव्यापक हैं; और सर्वव्यापक हैं इसी वजह सर्वज्ञ हैं; और सर्वज्ञ होने के कारण उन्हें सब मालूम होता है । तभी तो जैसा कर्म वैसा फल देते रहते हैं; आम बोते हैं तो वैसा फल; बबूल बोएँ तो बबूल; ज्वार बोएँ तो ज्वार और बाजरा बोएँ तो बाजरा मिले; किसीका सत्कार करें तो सत्कार मिले; किसीका तिरस्कार करें तो हमारा भी तिरस्कार होता है; किसीकी निंदा या प्रशंसा करें तो हमारी भी निंदा या प्रशंसा होती है । इस प्रकार जो कुछ हम करते हैं या जैसा आचरण करते हैं, वैसा फल मिल जाया करता है ।

ईश्वर संपूर्ण सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जाननेवाले हैं । वे सर्वज्ञ किस वजह हैं ? सर्वव्यापक होने के कारण । और सर्वव्यापक होने से कर्मों के यथोचित फल सब को मिल जाया करते हैं । सर्वज्ञता यह उनकी एक विशेषता है । जो अपने को ईश्वर कहलाते हों, उनमें यह देखें कि ऐसी सर्वज्ञता है क्या ? इस सूत्र के अनुसार उनकी परख करनी चाहिए । यदि कोई हाल में ईश्वर हो, अपने को ईश्वर कहलाता हो तो हमें यह कसौटी उपयोग में लेनी चाहिए कि उसमें सर्वज्ञता है क्या ? हमारी जेब में क्या है इतना भी जो न बता सके तो वह हमारे हृदय में क्या है अथवा पाँच साल पहले हमने क्या किया था अथवा शाम को क्या होनेवाला है इत्यादि तो वह कहने मात्र का ईश्वर कह सकेगा ही कैसे ? सिर्फ इतनी सर्वज्ञता भी उसमें अगर नहीं तो संपूर्ण सर्वज्ञता तो कैसे हो सकती है ? योगियों में भी योग के अभ्यास से आंशिक सर्वज्ञता आती है । वह सर्वज्ञता जितनी ईश्वर में है उतनी संपूर्ण नहीं होती है । इस तरह हमने सर्वज्ञता की चर्चा कर ली । इसके अतिरिक्त उनमें कुछ और भी है ? हाँ, उनके सम्बन्ध में और भी अधिक पहचान, अधिक परिचय मुनि पतंजलि अब देते हैं । वह कौन-सी परख है ?

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥२६॥

भावार्थ—

(ईश्वर) पूर्वकाल के गुरुओं के भी गुरु हैं और काल से भी वे छेदे-भेदे नहीं जा सकते ।

विस्तार—

ईश्वर सबके गुरु हैं । पूर्वकाल में जो जो गुरुजन हुए उन सबके वे गुरु हैं । हाल में जो जो गुरुजन हैं उनके भी वे गुरु हैं और अब के बाद होनेवाले सब के सब गुरुओं के भी वे गुरु हैं ।

“कालेनानवच्छेदात्”= काल से भी वे छेदे-भेदे नहीं जा सकते । अर्थात् काल द्वारा उनका नाश कभी नहीं हो सकता । ये ईश्वरगुरु कि जो त्रिकालीन गुरुओं के भी गुरु हैं, इनको काल नहीं छेद-भेद सकता । काल उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता । लेकिन पंचमहाभूत का शरीर जिन्होंने धारण किया है, ऐसे गुरु कि जो देहधारी हैं, उन गुरुओं को तो काल छेद-भेद सकता है; चाहे “अवतारी” शरीर क्यों न हो । अर्थात् शरीरधारी गुरुओं की मृत्यु होती है और वे कालक्रम से अपना अंत प्राप्त करते हैं । उनका छेदन-भेदन काल कर सकता है । परन्तु ऊपर जिस ईश्वर का वर्णन आया, वे काल को खा जानेवाला हैं । ईश्वर के बारे में यह भी एक सुंदर व्याख्या प्राप्त हुई । जो अपने को ईश्वर कहलाए वे काल को खा जा सकते हैं कि उन्हें काल खा जाता है ?

उपरोक्त विप्रेशतावाले ईश्वर का नाम क्या है यह आनेवाले सूत्र में कहा गया है ।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

भावार्थ—

उस (ईश्वर) का वाचक (शब्द) प्रणव (ओम् = ॐ) है ।

विस्तार—

हमारे ओम् परिवार के लिए, ओम् परिवार के साधकों के लिए,

हम सबके लिए और जीवमात्र के लिए यह सत्ताईसवाँ सूत्र भली-भाँति समझने और जीवन में उतारने के लिए है ।

उसका वाचक प्रणव है । उसका वाचक यानी किसका ? ऊपर जो तीन सूत्रों में निर्दिष्ट विशेषताएँ जिसमें हैं, उसका । उसका नाम प्रणव है । अब से जब जब हमें ऐसे ईश्वर के बारे में बातचीत करनी होगी तब उन्हें समझने में सरलता हो, बातचीत में आसानी हो इसलिए उनका एक छोटा नाम रख दिया प्रणव (ओम्) । यदि ऐसा कोई नाम न रखें तो ऐसे ईश्वर के बारे में बात कर रहे हैं यह कैसे जान सकें ? उनका नाम ओम् यदि न रखें तो हम उनके विषय में बात किस तरह कर सकेंगे ? जब जब ईश्वर के संबंध में बात करनी पड़े तब तब बात लम्बी हो जायगी और कालक्षेप होगा । उनके संबंध में बात करते समय इस तरह कहना पड़ेगा कि “जिनमें क्लेश, कर्म, विपाक नहीं और जो तीनों कालों के गुरुओं के भी गुरु हैं, जिनमें संपूर्ण सर्वज्ञता है, वे । उनकी बात मैं कर रहा हूँ । जिनमें ऐसा है, ऐसा है और ऐसा है उस तत्त्व की बात मैं कर रहा हूँ आदि, आदि ।” यदि उनका कोई नाम निर्दिष्ट हो तो जब जब उनके विषय में बात करनी पड़े तब तब उस नाम से संबोधन किया जा सके । वह नाम जब बोला जाय तब पता चल सके कि जिनमें उपरोक्त तीन सूत्रों में निर्दिष्ट सब विशेषताएँ हैं उनका यह नाम है । जब जब ईश्वर के संबंध में बात करनी हो, ‘ओम्’ ही हम बोलेंगे जिससे हमें उपरोक्त विशेषताओंवाली सत्ता का बोध होगा । कैसा है छोटा-छिगना यह नाम ! ऐसा सुंदर एवं सार्थक नाम दे दिया कि जिससे बातचीत में सरलता हो और व्यर्थ कालक्षेप भी न हो; पर्याप्त बोध भी हो, इसलिए उनका एक नाम रख दिया । इस विषय में ‘प्रणवबोध पदसूत्री’ में एक दृष्टांत दिया गया है बम्बई का । यह बम्बई तो एक छोटा नाम है । यह अमुक जगह का नाम है । यदि उस जगह का कुल भी नाम न रखा गया हो और हमें कभी बम्बई के विषय में कुल बात करनी हो तो कैसे कर सकेंगे ? हमारा मित्र बम्बई जाकर आया हो और यहाँ हमसे बम्बई के बारे

में बातचीत करने लगे तब यदि उस जगह का नाम “बम्बई” अगर न रखा हो तो वह उस जगह के बारे में बातचीत कैसे करेगा ? उसे बातचीत के लिए कितनी लम्बी बात कहनी पड़ेगी ! यथा—‘भाई, आप एक महिने से दिखाई नहीं देते थे, तो कहाँ गये थे ?’ तब वे भाई जवाब देंगे, “मैं ऐसी जगह गया था कि जहाँ एक बड़ा समंदर है और जहाँ बड़े बड़े बहुत से होटल हैं; जहाँ विद्युत की गाड़ियाँ दौड़ती हैं और जहाँ एक बड़ा बन्दरगाह है, जहाँ एक इतनी बड़ी जगह है और जहाँ ऐसा ऐसा एक बड़ा देखने लायक स्थल है, जो इतने-इतने बड़े विस्तार में फैला हुआ है; और ऐसा है, ऐसा है और ऐसा है वहाँ मैं एक महिने से गया था । इसलिए मैं यहाँ हाजिर नहीं था ।” यदि कुछ नाम उस जगह का न रखा गया हो तो उसे यों कहना पड़ जाएगा । फिर हम उसे कहेंगे, “अच्छा, जहाँ ऐसा है ऐसा है और ऐसा है, ऐसी जगह आप गये थे !” इस तरह बात का कितना बड़ा व्यर्थ विस्तार हुआ करेगा । इस प्रकार का विस्तार न करना पड़े और थोड़े में बात पूरी की जा सके इसलिए समूची जगह का नाम रखा बम्बई । इस जगह का नाम केदारेश्वर रखा है, उस जगह का नाम रखा है अहमदाबाद । जब अहमदाबाद कहते हैं तब सुननेवाले को, बोलनेवाले को और अन्य सभी को खयाल आ जाता है कि किस जगह की बात चली । बम्बई कहा तो खयाल आया कि वह बम्बई । इसलिए यह छोटा नाम (ओम्) रखा गया; तीन सूत्रों में ईश्वर की जो स्पष्टता की, ईश्वर का जो वर्णन किया उसको एक छोटा नाम दिया प्रणव—ओम् ।

जब जब हम ओम् कहेंगे तब तब हमें पता चलेगा कि ओम् मानी क्या ? ओम् अर्थात् एक ऐसा तत्त्व कि जिसमें उपरोक्त विशेषताएँ मौजूद हैं उसका नाम । इससे वक्ता और श्रोता को ओम् के बारे में साफ खयाल आता है । अब के बाद जब जब ओम् या प्रणव हम कहेंगे तब पता चलेगा कि यह किसका नाम लिया । ओम् का मानी ईश्वर का, और ईश्वर अर्थात् ऊपर जो जो गिनाये वे सब विशेषण जिनमें हैं वे । जिनमें ऐसी विशेषताएँ होना

असंभव है वे कोई ईश्वर नहीं । ईश्वर केवल एक ही हैं और उनमें ये सभी विशेषताएँ हैं ।

ऊपर ओम् का वर्णन जो किया गया वह योगशास्त्र के सूत्रों के सहारे किया । उस ओम् के रहस्यों को अधिक व्यापक एवं व्यवहार्य पद्धति से समझने का अब हम प्रयत्न करेंगे ।

हम योगशास्त्र का प्रारम्भ करने से पहले हमेशा दीर्घ प्रणवोच्चार करते हैं । प्रणव की महत्ता कितनी जबरदस्त है यह योग के जिज्ञासु जानते हैं । उनके लिए ओम् की उपासना निर्दिष्ट की गई है — कही गई है । ओम् के सार्थक जप से विघ्न एवं उपविघ्न टल जाते हैं यह बात हम पहले के सूत्रों में देख गये । इसके अतिरिक्त, परमात्माबोधक विषयक जो जो कुछ है वह सब ओम् में छिपा हुआ है, व्यवस्थित है । ओम् में उन सबका समावेश हो जाता है । ओम् शब्द के अतिरिक्त और बहुतेरे ईश्वरवाचक शब्द हैं, परन्तु वे सब संकीर्ण अर्थवाले हैं । ओम् शब्द से जितने व्यापक एवं उदार अर्थ व्यक्त हो सकते हैं उतने और किसी शब्द से नहीं हो सकते । इसलिए ईश्वर की उपासना ओम् शब्द से ही करने के लिए योगाभ्यासियों को कहा गया है और यह उचित भी है । ओम् का दीर्घ उच्चार करने से भी शरीर में बहुत कुछ रहस्यात्मक कंपन एवं स्पंदन होते हैं ।

ओम् में तीन अक्षर आये हैं । 'अ' 'उ' और 'म्' । उनमें म (म्) आधा है । इस म् का उच्चार करते समय दोनों होंठ बंद करने पड़ते हैं और उन्हें बंद करने के बाद न खोले जायँ, तब आधे म का (म्) उच्चार सही होता है । परन्तु बंद करके यदि खोल देते हैं तो 'म्' में 'अ' मिल जाता है । 'म्' व्यंजन में 'अ' स्वर मिल जाने से यह पूरा (म) हो जाता है । प्रत्येक व्यंजन में स्वर होना आवश्यक है । बिना स्वर की सहायता के किसी व्यंजन का अस्तित्व ही नहीं । अगर कदाचित् बोलने का प्रयत्न किया जाय तो आधा ही बोल सकेंगे । किसी भी व्यंजन का बोलने का यदि प्रयत्न करेंगे

तो उसमें 'अ' स्वर आ ही जाएगा । 'अ' स्वर की सहायता के बिना व्यंजन का उच्चार नहीं कर सकते । सब के सब व्यंजनों को हम 'अ' की सहायता से ही बोल सकते हैं । वाणी तमाम स्वरों और व्यंजनों से ही बनी हुई है । वाणी बोलने में 'अ' की जरूरत पड़ती है । इसके बिना हम वाणी बोल नहीं सकते । इस प्रकार वाणी का मूल आलंबन ओम् में आया हुआ 'अ' है । 'अ' की महत्ता इतनी बड़ी है । तो, ओम् इन तीन 'अ' 'उ' और 'म्' अक्षरों से बना हुआ है । 'म्' ऐसा उच्चार करने में बोलने से पहले होंठ बंद करने पड़ते हैं । उन्हें बंद ही रखते हैं तभी 'म्' का उच्चार हो सकता है । अगर होंठ खोल देते हैं तो उसमें 'अ' मिल जाता है । ओम्...ओम्... (होंठ बंद हों उस स्थिति में) तो उसमें आधा म ('म्') आया । फिर होंठ खोल कर यदि बोलते हैं तो 'म्' में 'अ' आ जाने से पूरे 'म' का उच्चार हुआ । परन्तु हमें आधा म (म्) बोलना हो तब तो होंठ बंद ही रखने पड़ते हैं । जैसे कि प्रथम 'ओ' और फिर 'म्' अथवा तो 'अ', 'उ' और 'म्' तो इसमें 'म्' बोलते समय बंद होंठ रखकर जितना अधिक समय उसे जारी रखना हो उतना रख सकेंगे । किन्तु यदि होंठ खोल देंगे तो इसमें 'अ' मिल जाएगा । लेकिन होंठ खोलेंगे नहीं तो आधे म (म्) का उच्चार हो सकेगा । 'अ' 'उ' और 'म्' बोलते समय जब होंठ मिले तब उन्हें बंद रखकर ही ध्वनि को जारी रखते हैं तो उस ध्वनि (गुंजन) से मेरुदंड में ऐसे अलौकिक एवं दिव्य स्पंदन होते हैं कि जिससे आरोग्य एवं ज्ञान की प्राप्ति में बहुत सहायता मिलती है । इससे अतीन्द्रिय ज्ञान (जिस ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रियों के जरिये नहीं हो सकती ऐसा ज्ञान) प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार के अधिकार की आवश्यकता होती है वैसा अधिकार प्राप्त होता है । वैसी योग्यता लाने के लिए सुषुम्णा के भीतर के खास केन्द्र जागृत बनने चाहिए । इन केन्द्रों में इस तरह ओम् के दीर्घ उच्चारण से जागृति लाई जा सकती है, इन्हें उत्तेजित करके उनमें जागृति लायी जा सकती है ।

दीर्घ प्रणवोच्चार से इन केन्द्रों में ऐसी क्षमता आती है कि

जिससे अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है। दीर्घ प्रणवोच्चार के समय बंद होंठ से 'म्' का गुंजन चालू हो तब यदि मेरुदंड पर उँगली रखें तो खयाल आएगा कि उसमें कैसे झनझनाहट हो रही है, उसमें कैसे कंपन हो रहे हैं। इन कंपनों से मेरुदंड उत्तेजित होता है। योगशास्त्र में बहत्तर करोड़ नाड़ियों का निर्देश है जिनमें इडा, पिंगला एवं सुषुम्णा ये तीन मुख्य कही गई हैं। सुषुम्णा में चित्रा, वज्रा और ब्रह्म नाड़ियों का समावेश होता है। मेरुदंड के भीतर जो तीन नाड़ियाँ हैं उनमें मुख्य सुषुम्णा है और सुषुम्णा में भी जिनके नाम चित्रा, वज्रा और ब्रह्म हैं वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियाँ मुख्य हैं। कुंडलिनी ब्रह्म नाड़ी में से गुजरती हुई ऊपर मस्तिष्क में जाती है। मूलाधार में स्थित कुंडलिनी (सुप्त शक्ति) इस तरह जाग पड़ती है। कुंडलिनी अर्थात् कुंडलाकार बन के पड़ी हुई है वह। मतलब यह कि जिस शक्ति से हमने अबतक कुछ काम नहीं लिया वह। जो जो और जितनी शक्तियाँ हममें विद्यमान हैं उन सब से हम काम नहीं लेते। हममें जितनी शक्ति है उसके कुछ अंश का ही उपयोग हम कर रहे हैं। बाकी बची हुई बहुत मात्रा में शक्ति उ्यों कि त्यों अछूते धन-सी पड़ी हुई है। इस अश्रुण शक्ति का भी उपयोग कर सकने का नाम है कुंडलिनी शक्ति की जागृति।

इसमें (इस शक्ति में) न तो कुछ जागृति होती है न तो कुछ नींद; ये तो स्थूल शब्द हैं। वातचीत के आलंबन के लिए शब्दों का उपयोग किये बिना कोई चारा नहीं होता इसलिए जागृत और सुप्त शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसी वजह 'कुंडलिनी' शब्द उनके लिए मुख्य है। कुंडलिनी अर्थात् कुंडल की तरह बल खाकर पड़ी हुई—सकुच कर पड़ी हुई। हमारे जीवन में हम जो कुछ कर रहे हैं इसमें पड़ी हुई जो शक्ति है उसका अमुक अंश ही काम में लेते हैं, कुछ अंश का ही उपयोग करते हैं। हम चाहे बड़े कवि बन जायँ, चाहे बड़े प्रोफेसर; चाहे बड़े डॉक्टर बनें, चाहे बड़े वकील; चाहे बड़े वैज्ञानिक हो जायँ, चाहे बड़े इंजिनियर उन सबमें शक्ति का अति अल्प अंश ही व्यय हुआ। बाकी सब पड़ी रही। इसका भी यदि हम उपयोग करने

लगे, उपयोग कर सकें तो यह समझ लेना कि हमारी कुण्डलिनी शक्ति जाग उठी है। यह है “कुण्डलिनी शक्ति की जागृति” का सही अर्थ।

ऊपर जो दीर्घ प्रणवोच्चार की बात आयी, उससे मेरुदंड में विशेष कंपन होते हैं कि जिससे उसमें आयी हुई सुषुम्णा नाड़ी और सुषुम्णा के भीतर आयी हुई चित्रा, वज्रा और ब्रह्म नाड़ियों तक उसकी उत्तेजना, उसकी गति, उसकी हलचल पहुँचती है और इसके कारण वे शुद्ध-परिशुद्ध होती हैं और परिशुद्ध होने का मतलब यह है कि सूक्ष्म प्राण (विद्युत-शक्ति) का उनमें प्रवेश हो सकना, प्रवेश हो सके वैसे स्थिति में उनका हो जाना। दीर्घ प्रणवोच्चार की इतनी जबरदस्त महत्ता है। इसलिए योगसाधकों के लिए ईश्वर की उपासना, गुरुओं के गुरु की उपासना, परम गुरु की उपासना, “ओम्” से करने को कहा गया है। ईश्वर का मुख्य नाम ओम् है जो ईश्वर के सही अर्थ का बोध करानेवाला है। इस तरह ओम् की महत्ता बहुत ही बड़ी है।

प्रत्येक संप्रदायने किसी-न-किसी प्रकार ओम् का स्वीकार किया है, उसे सर्वश्रेष्ठ माना है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो जहाँ भी कोई कार्य होता है वहाँ स्पंदन होते हैं और जहाँ स्पंदन वहाँ उनका एक ध्वनि होता है। कल्प के प्रारंभ में अर्थात् महाप्रलय के अंत और कल्प के शुरू में—स्थूल जगत का जब आरंभ होता है तब सृष्टिरचनारूप आदि कारणों में से आदि कार्य रूप स्पंदन प्रकट होते हैं। जहाँ स्पंदन वहाँ ध्वनि इस न्याय से उसमें से एक खास प्रकार का ध्वनि निकलता है। यह जो ध्वनि उस वक्त निकलता है वह दीर्घ प्रणवोच्चार से बहुत मिलता-जुलता होता है। इसलिए प्रणव ध्वन्यात्मक है, वर्णात्मक नहीं। परन्तु उपासना के लिए उस ओम् को वर्णात्मक स्वरूप दिया गया। वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक अर्थात् क्या? क, ख, ग, घ, इत्यादि सब वर्ण हैं। ओम् का वर्णात्मक स्वरूप है अ, उ और म्। प्रणव का ध्वन्यात्मक

स्वरूप वर्णन का विषय ही नहीं । इसलिए ओम् वास्तव में वाणी का विषय नहीं है बल्कि ओम् तो ध्यान द्वारा अनुभूति पाने का विषय है ।

ओम् के चार पाद (पग) हैं । प्रथम, दूसरा, तीसरा और चौथा । इस तरह विश्व, तैजस और प्राज्ञ तथा विराट, हिरण्य गर्भ और ईश्वर आदि की समझ दी जाती है; और जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार अवस्थाओं को भी इस तरह प्रतिपादित की जाती हैं । ओम् के तीन मात्राएँ और चार पाद हैं । अ, उ और म् ये तीन मात्राएँ हैं । चार पाद इस तरह हैं— प्रथम पाद अ, दूसरा पाद उ और तीसरा पाद म् अर्थात् जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति । चौथा पाद है “विराम” जहाँ कुछ भी नहीं । तुरीय मानी जहाँ जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ नहीं ऐसी चौथी (चतुर्-तुर्या) अवस्था में प्रवेश करना । ओम् का जप करते करते, ‘अ’ का जप जब चलता हो उसमें से ‘उ’ के जप में जायँ, फिर उसमें से ‘म्’ के जप में और इसके बाद तीनों वर्णों का लोप हो जाय । इस तरह होते होते जब समाधि की दशा में पहुँच जायँ, असंप्रज्ञात योग में पहुँचा जाय तब की जो स्थिति वह है विराम, जो चौथा अव्यक्त षाद है । इस प्रकार शास्त्रों में ओम् को समझाने के लिए बहुत विस्तारपूर्वक और तात्त्विक रूप में प्रयत्न हुआ है । अभी दीर्घ प्रणवोच्चार जो किया उसमें से कईएक बातें याद आ गईं और उनमें से यथाशक्य आपको कहने का प्रयत्न किया । तो, इस तरह ये अ, उ और म्=ओम् है । अब इसे हम और अधिक समझने का प्रयत्न करते हैं ।

समस्त विश्व का जो सत् साहित्य है उसे संपूर्ण जानने की हमें इच्छा होती है । इस तेलनार गाँव के ग्रंथालय में अनंत धार्मिक ग्रंथ हैं । उनमें से अमुक ग्रंथ हम पढ़ लें । हमें तो उन सभी ग्रंथों को पढ़ने की जिज्ञासा हो किन्तु वह क्या पूरी हो सकेगी ? इस जिज्ञासा को हम तृप्त नहीं कर सकेंगे । यह बात तो तेलनार गाँव की हुई, परन्तु सारे गुजरात में जितने धार्मिक ग्रंथ हैं उनमें क्या है यह जानने की इच्छा हमें हो तो क्या वह पूरी हो सकेगी ? इसे भी अधिक सारे हिन्दुस्तान और सारे विश्व में तो कितना सत्

साहित्य होगा ? उसमें भी क्या है यह जानने की इच्छा हमें हो तो यह कैसे पूरी कर सकेंगे ? तो इसे पूरी करने के लिए क्या किया जाय ? इसके लिए परम कृपालु योगियों, आचार्यों एवं संतोंने प्रयत्न किये हैं । समस्त विश्व में मौजूद जो सत् साहित्य है, उसे उन्होंने संक्षिप्त कर डाला । उस समस्त सत् साहित्य का निचोड़, समस्त विश्व के सत् साहित्य का निचोड़, उसका सत्त्व-तत्त्व चारों वेदों में दे दिया । उसका संक्षिप्त स्वरूप तो चार वेदों के रूप में कर डाला किन्तु ये चार वेद भी केवल उनके लिए उपयोगी हुए जो वैदिक भाषा जानते थे । लेकिन सामान्य मनुष्यों को समस्त विश्व के सत् साहित्य को जानने की जिज्ञासा हो तब उनकी जिज्ञासा कैसे पूरी हो सके ? तो इसके लिए फिरसे प्रयत्न हुआ । क्या, इन वेदों का अधिक संक्षिप्त और सुचारु स्वरूप है ? तो योगियोंने जवाब दिया कि हाँ, है और फिर वेदों का जो संक्षिप्त स्वरूप किया गया वह हुई त्रिपदा गायत्री, तीन पदोंवाली-तत् सवितुर्वरेण्यं-भर्गोदेवस्य धीमहि-धियो यो नः प्रचोदयात् । ये तीन उसके पद हैं । वेदों का दोहन करके गायत्री स्वरूप दूध ले लिया । चारों वेदों का संक्षिप्त स्वरूप है यह त्रिपदा गायत्री । मनुष्य के लोभ की सीमा नहीं । वह सोचने लगा कि यह तो बहुत संक्षिप्त स्वरूप हुआ सही किन्तु इससे भी अधिक संक्षिप्त हो सके तो कितना अच्छा ! इसलिए उसने योगीजनों को-आचार्यगण को प्रश्न किया कि इससे भी अधिक संक्षिप्त स्वरूप है क्या ? तो, कृपालु संतोंने इसका भी संक्षिप्त स्वरूप कर दिया और ये हुईं तीन व्याहृतियाँ जो गायत्रीमंत्र के आगे रखी जाती हैं—भूः, भुवः, स्वः । इससे भी अधिक छोटा स्वरूप जानने की आदमी को इच्छा हुई तो इसका भी नन्हा स्वरूप कर डाला । वह हुआ अ, उ और म् । इस तरह समस्त विश्व का जो सत् साहित्य है उसका अंतिम से अंतिम अत्यंत संक्षिप्त जो स्वरूप हुआ उसका नाम अ, उ और म् । इससे भी अधिक छोटा स्वरूप जानने की इच्छा हुई तब अनुभवी गुरुजनोंने कह दिया कि इससे छोटा स्वरूप अब नहीं है ।

यदि इससे भी छोटा स्वरूप चाहते हो तो अ, उ और म् का एक स्वर से — एक लय से उच्चार करो और वह उच्चार करने से जो ध्वनिकर्णगोचर हो उसे इसका छोटा स्वरूप समझो। वह इसका स्वयंभू स्वरूप है। इसका स्वयंभू स्वरूप क्या हुआ ? अ, उ और म् को लय के साथ बोले तो क्या सुनाई देता है ? तो, “ओम्” (ॐ) ध्वनि सुनाई पड़ता है।

अ, उ और म्, बीचमें बिना रूके तेजी से जब बोलते हैं तब “ओम्” ध्वनि सुनाई देता है। इस प्रकार ओम् हुआ, इस तरह हमारे हाथ में ओम् आया। समस्त विश्व के सत् साहित्य का अंतिम से अंतिम अत्यंत छोटा स्वरूप हुआ वह “ओम्”। आज तक हम सब ओम् बोलते थे तब हमारे मन में उसका जो अर्थ था, जो ज्ञान था उसकी अपेक्षा अब हम जब ओम् बोलेंगे तब उस अर्थ और ज्ञान में बहुत वृद्धि पाएँगे। ओम् अर्थात् क्या ? ओम् जरा विस्तृत किया गया तो हुआ अ, उ और म्। और अ, उ और म् को जरा विस्तृत किया गया तो हुई भूः, भुवः, स्वः रूप में महाव्याहृतियाँ; और इन्हें जरा विस्तृत करने से हुई त्रिपदा गायत्री; और इसे जरा विस्तृत की गई तो हुए चार वेद; और चार वेदों को विस्तृत किये तो हुआ विश्व समस्त का सत् साहित्य। समस्त विश्व के सत् साहित्य के निचोड़ का अति संक्षिप्त स्वरूप जो हुआ यह है ‘ओम्’। यदि ऐसा छोटा स्वरूप हमें न दिया होता तो समस्त विश्व के सत् साहित्य का लाभ हमें न मिल सकता। हमें लाभ पहुँचाने के हेतु मात्र से कृपालु आचार्यों ने, अहैतुकी कृपावन्त योगीजनों ने उसका संक्षिप्त स्वरूप करके दिया कि यह है उसका निचोड़। आप ओम् का उच्चार करेगे तो उसमें समस्त विश्व में व्याप्त जो सत् साहित्य है वह आ जायगा; उसका उच्चारण होगा — उसका गान होगा — उसकी उपासना होगी। तो, इस प्रकार आज हम ओम् को अधिक अच्छी तरह समझे, अधिक व्यावहारिक ढंग से समझे और अधिक स्थूल-सूक्ष्म रीति से भी समझे; सामान्य मनुष्य जिस पद्धति से समझ पाता है वैसी सामान्य बुद्धि से हम समझे। इस तरह ‘अ’ ‘उ’ और ‘म्’ को समझ लेंगे।

हम सब जिज्ञासु, साधक, धार्मिक वृत्तिवाले मनुष्य, कल्याण के पथ चलने के इच्छुक पक्षिक जो इकट्ठे होते हैं, हम सबके लिए इक नाम दे दिया—“ओम् परिवार” । अब इसे समझने का प्रयत्न करेंगे ।

धार्मिक वृत्तिवाले हम सब यहाँ जो इकट्ठे होते हैं उन्हें अलग अलग नाम न देकर एक नाम दिया “ओम् परिवार”—ओम् के उपासक । ओम् परिवार में जो इकट्ठे होते हैं उनका तो इसमें समावेश हो ही जाता है किन्तु जो ओम् परिवार में नहीं आते उन तमाम का ओम् परिवार में समावेश हो जाता है । ओम् को जो उपरोक्त प्रकार से समझे हैं उनका, ओम् को जो मानते हैं उनका, ओम् के प्रति जो प्रेम रखते हैं उनका तो हमने ओम् परिवार में समावेश कर ही लिया है किन्तु जिनको ओम् का ऐसा ज्ञान नहीं है उनका भी, जो ओम् को नहीं मानते उनका भी अनायास ही ओम् परिवार में समावेश हो जाता है । केवल मनुष्यों का ही नहीं किन्तु पशुओं और पक्षियों का भी ओम् परिवार में समावेश हो जाता है । यह सब कैसे होता है इसका रहस्य अब खुलता है । उन सबको हम ओम् परिवार के क्यों कहते हैं ? पशुओं, पक्षियों एवं मनुष्यों तमाम को, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों में सबको, सभी संप्रदायों को, सभी देशों को, सभी देशों के रहनेवालों को—चाहे हिन्दुस्तान में रहता हो, चाहे हिन्दुस्तान के बाहर, तमाम को हमने ओम् परिवार में गिन लिये हैं, क्यों ? किस तरह हम उन्हें ओम् परिवार के कहते हैं ? इस तरह : जगत के सत् साहित्य का अंतिम स्वरूप जो ‘अ’, ‘उ’ और ‘म्’ हैं उनमें प्रथम आया है ‘अ’, दूसरा ‘उ’ और तीसरा ‘म्’ । ‘अ’, ‘उ’ और ‘म्’ इन तीनों के बिना कौन निभ सकता है ? कोई नहीं चला सकता । इन तीनों का सहारा सबको लेना पड़ता है । भाषा चाहे गुजराती, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, सिंधी, फारसी, जर्मन या रशियन कोई भी हो, जगत की कोई भी भाषा हो, प्रत्येक में ‘अ’, ‘उ’, ‘म्’ तो आएँगे ही । ‘अ’, ‘उ’ और ‘म्’ के उच्चार किये बिना किसी भी भाषाभाषी का (व्यवहार) नहीं चल सकेगा । प्रत्येक भाषाभाषी को इनका उपयोग करना ही पड़ता है,

इनकी मदद लेनी ही पड़ती है। इस तरह सब ओम् के उपासक कहे जाते हैं। चाहे वे ओम् को समझते हों, चाहे न समझते हों; ओम् के प्रेमी हों या न हों; मानते हों या न मानते हों फिर भी वे सब जाने-अनजाने इस तरह ओम् की उपासना कर रहे हैं, और इसलिए वे सब ओम् परिवार में ही आ गये। चाहे जान बूझकर उपासना करें, चाहे अनजाने, परन्तु 'अ', 'उ' और 'म्' के बिना किसी का (व्यवहार) नहीं चल सकता। जब भी बोलने की जरूरत पड़ती है तब 'अ', 'उ' और 'म्' आ ही जाते हैं। अभी थोड़ी देर पहले हमने बात की कि 'अ' स्वर के बिना किसी भी व्यंजन का उच्चारण ही नहीं सकता। क, ख, ग, घ, च, छ इन सबमें 'अ' आता ही है। यदि 'अ' न आये तो 'क' का उच्चारण कैसे हो सकेगा? ककहरे और चारदखड़ी को 'अ' के बिना नहीं चल सकता। प्रत्येक को अ की सहायता लेनी पड़ती है इसलिए ओम् की जो तीन मात्राएँ 'अ', 'उ' और 'म्' के बिना किसे चलेगा? तो, इस प्रकार जाने-अनजाने सब ओम् के उपासक ही हैं और इस कारण सब ओम् परिवार के ही हैं। ओम् परिवार कोई छोटा नहीं है। ओम् परिवार यानी समस्त जीवजगत और इससे भी और बढ़कर कहा जाय तो समस्त जड़चेतन जगत। इस प्रकार "ओम् परिवार" नाम सार्थक है। यह तो हुई मनुष्यों की बात। अब आगे हम पशु-पक्षियों की बात समझें।

सामने पेड़ पर कौआ बैठ कर बोल रहा था "का....का....।" यह चिड़िया बोल रही थी "ची...ची...।" 'का' में क और आ आये हैं और ची में च और ई आये हैं। ई में और आ में 'अ' है। सिवा 'अ' के कोई कुछ भी उच्चारण कर सकता है? इसी प्रकार भैंस, गाय, घोड़ा, हाथी इत्यादि भी। भैंस रंभाती है तब भां....भां.... और छोटा बछड़ा बोलता है तब अम्मा....अम्मा....होता है। पशु-पक्षी भी अपनी भाषा, बिना अ के नहीं बोल सकते। तो, इस तरह मनुष्य, पशु एवं पक्षी तमाम ओम् के ही उपासक हैं और इसलिए ओम् परिवारवाले ही हैं। तो, इस प्रकार ओम् परिवार को व्यापक

अर्थ में समझने का प्रयत्न हमने किया कि जिससे हम यह न समझ बैठें कि केवल हम ही ओम् परिवार में हैं और जो हमारे मंडल में नहीं आते हैं वे ओम् परिवार के बाहर हैं। हमें तो सबको ओम् परिवारवाले ही मानने हैं। चाहे हमें कोई ओम् परिवारवाले माने या न माने परन्तु हमें तो और सभी को ओम् परिवारवाले ही मानने हैं अर्थात् जैसे वे ओम् परिवार के ही हों, हमारे परिवार के ही हों, हमारे कुटुंबीजनों में से हों वैसे। अन्य कोई हमारे प्रति प्रेम चाहे रखें चाहे न रखें परन्तु हमें तो उनके प्रति प्रेम रखना है। इस तरह ओम् के इस संक्षिप्त स्वरूप को हम समझे। इस तरह, सभी ओम् के उपासक किस प्रकार हैं यह सिद्ध हुआ। सभी ओम् के उपासक हैं, सभी ओम् की ही उपासना किये जा रहे हैं यह बात इस प्रकार हम सभी ने अच्छी तरह दिमाग में बैठायी।

अब ओम् की आकृति के विषय में कुछ बात समझ लें। आप सबने वह देखी है। गुजराती के तीन के अंक जैसी (३), और अंदर एक अन्य लकीर से कुटल-सा बना होता है (३०)। उसके ऊपर एक अर्ध चन्द्र है (३०) और उस पर एक बिन्दु आया है (३०)। उसको बिन्दु कहा जाता है और इस सम्बन्ध में एक श्लोक है—

ओम्कारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।

कामदं मोक्षदं चैव, ओम्काराय नमो नमः ॥

अर्थ : बिन्दु से युक्त-संयुक्त ओम् का योगी लोग नित्य ध्यान करते हैं और इससे वे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। बिन्दु से युक्त का अर्थ है उसके ऊपर जो अनुस्वार किया गया है वह। उसे बिन्दु कहते हैं। मंडल और बिन्दु में क्या फर्क है? यह (०) मंडल है। इसके बीच का भाग खाली है। यह (●) बिन्दु है। इसके बीच का हिस्सा भरा हुआ है। अंदर का भाग भरा होने के कारण यह ब्रह्म का वाचक है। ब्रह्म खाली नहीं, सर्वत्र भरा हुआ है। इस प्रकार मंडल और बिन्दु दोनों में यह फर्क है। बिन्दु अर्थात् ब्रह्मतत्त्व से भरा हुआ।

ओम् पर जो बिन्दु किया जाता है उसे यदि हटा दिया जाय तो वह ओम् नहीं रहता, केवल एक आकृतिमात्र रह जाता है । उस पर जब बिन्दु किया जाये तभी उसे ओम् कहा जाता है, तभी वह ईश्वरवाचक हो सकता है ।

उस बिन्दु के (उस बिन्दु का आकार गोल होना चाहिए) कहीं कहीं चौरस हम देखते हैं—चार कोनेवाला होना उचित नहीं । क्योंकि चौरस आकृति करने से उसकी सीमा निश्चित हो गई । चार कोने हुए । एक लकीर पूरी हुई, फिर दूसरी, फिर तीसरी और फिर चौथी लकीर पूरी हुई । इस प्रकार उसकी सीमा वहाँ मर्यादित हो जाती है जहाँ लकीर पूरी हो जाती है । यहाँ तो सीमाहीनता बतानी है । असीम-निःसीम-अमर्याद-सर्वव्यापक । उसकी सर्वव्यापकता की कोई मर्यादा नहीं, कोई सीमा नहीं—यह तो गोल आकृति ही बताने सकती है । गोलाकार सीमारहितपने का बोधक है । गोल मानी जिसकी सीमा ही न आये । गोल आकृति पर यदि उंगली घुमाई जाय तो उँगली के कहीं रोक ही नहीं आता इसलिए निःसीमपने का, सर्व-व्यापकता का बोध होता है । ओम् पर जो बिन्दु किया जाय उसे गोलाकार करना चाहिए । यदि गोलाकार हो तो ही वह बिन्दु कहलाता है । यदि चौरस हो तो उसे बिन्दु नहीं कहा जा सकता । इस तरह हम बिन्दु को समझे ।

विश्व के सत् साहित्य का जो संक्षिप्त स्वरूप किया तो वह ओम् हुआ । बिन्दु ओम् की आकृति का संक्षिप्त स्वरूप है । ओम् की आकृति के यदि अति संक्षिप्त चित्रित करनी हो तो मात्र बिन्दु चित्रित करेंगे तो चलेगा । यह बिन्दु ओम् की आकृति का छोटा स्वरूप—संक्षिप्त स्वरूप हुआ, यह उसकी लघुलिपि हुई । जब केवल बिन्दु किया जाता है तब वह ओम् की आकृति का संक्षिप्त स्वरूप हुआ । जो बिन्दु हम अपने भाल पर टीके के रूप में करते हैं, उस बिन्दु को अब हमें उपरोक्त रीत से समझना है । ओम् के संक्षिप्त स्वरूप के इस तरह अपना लिया गया है । इस संक्षिप्त स्वरूप से,

इस संक्षिप्त स्वरूप के माध्यम से ओम् को इस प्रकार सर्वमान्य कर लिया गया है। बिन्दु के रूप में ओम् भाल पर रखा जाता है। चाहे सहजानन्द, चाहे रामानन्द, चाहे शिवानन्द, चाहे शक्त्यानन्द, चाहे जैन संप्रदाय हो उनमें बिन्दु को भाल पर रखा जाता है। वह बिन्दु क्या है? ओम् की आकृति का संक्षिप्त स्वरूप है। इस प्रकार भाल पर इस ओम् को चित्रित किया; ओम् के छोटे स्वरूप को रखा गया। इस रीत से ओम् की पूजा-उपासना की गई।

शक्ति संप्रदाय में माताजी के हाथमें जो त्रिशूल होता है वह क्या है? वह त्रिशूल भी ओम् की आकृति का थोड़ा परिवर्तित स्वरूप है। ओम् के बीच की मुड़ी हुई शाखा को यदि सीधी कर डालते हैं तो त्रिशूल की आकृति हो जाती है। इस तरह: ॐ, ॐ, ॐ ।

इस प्रकार माताजी के हाथ में जो त्रिशूल है वह भी ओम् की आकृति है। उसका नाम भी क्या है? त्रिंशूल=त्रिशूल। ओम् में भी 'अ', 'उ' और 'म्' इस तरह त्रि-तीन हैं। त्रिंशूल अर्थात् तीन शूलों को हटा देनेवाला। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इस प्रकार तीन प्रकार के जो शूल-कांटे हैं, उन तीनों प्रकार के कांटों से जिसकी सहायता से मुक्त होना है, उसका नाम है त्रिशूल। इसलिए त्रिशूल भी ओम् का ही स्वरूप है।

माताजी का एक नाम है उमिया-उमिया माता। गुजरात में पटेल लोग हैं, उनकी कडवा पाटीदार और लेउआ पाटीदार ऐसी दो शाखाएँ हैं। पाटीदारों की कुलदेवी उमिया माताजी का मंदिर उँझा में है। पार्वती-उमिया-उमैया तथा उमा ये सब समानार्थी शब्द हैं। "उमा" शब्द में भी ओम् के 'अ', 'उ' और 'म्' तीन अक्षर आये हैं। "उमा" शब्द में मौजूद तीनों अक्षरों को यदि अलग कर देते हैं तो 'उ' 'म' और 'अ' होते हैं। 'मा' में दो अक्षर आये हैं 'म' और 'अ'। उमा का प्रथम अक्षर 'उ', फिर दूसरा 'म' और तीसरा 'अ'। माताजी के नाम में इस प्रकार तीन अक्षर हुए। माताजी के नाम का जो उमा शब्द है वह 'उ', 'म' और 'अ' से बनता है।

ओम् में 'अ', 'उ' और 'म्' आते हैं। अक्षरों के क्रम में यहाँ जरा फर्क हो गया है। उमा शब्द में 'उ', 'म' और 'अ' हैं और ओम् में 'अ', 'उ' और 'न्'। अक्षर तीनों वे ही हैं, एक भी अन्य नहीं परन्तु क्रमभेद है, क्रम में परिवर्तन कर डाला है। इस दृष्टि से देखा जाय तो उमा माता के जो उपासक हैं (ऊँझा में जिनकी कुलदेवी उमा मैया—उमैया मैया हैं, जो उन्हें माननेवाले हैं) वे हकीकत में किसके उपासक हैं? वे ओम् के मानते हैं। उन्हें स्वयं भले इसका पता न हो लेकिन उनका इष्टदेव ओम् है। वे सब ओम् के उपासक हैं। इस दृष्टि से ऊँझा में उमिया मैया का जो स्थान है, उसे ओम् का स्थान, ओम्पीठ अथवा ओम्गुरुपीठ कहा जा सकता है। यह तत्त्व की बात हुई। उसी तरह देखा जाय तो उमा कहो या उमिया, इनमें ये 'अ', 'उ' और 'म्' हैं और 'अ', 'उ' और 'म्' ओम् में भी हैं। इसलिए इन माताजी के माननेवाले सभी जाने-अनजाने ओम् के परम उपासक ही हैं। उमा माताजी का मंदिर जिस गाँव में है, उसका नाम ऊँझा है। ऊँझा शब्द में भी 'ऊ' और उस पर बिंदु के रूप में 'म्' आया है। लेउआ शब्द भी हम समझ लें। इन तीनों अक्षरों को अलग करते हैं तो 'ले', 'उ', 'आ' होते हैं। इनका क्रम बदलेंगे तो 'आ', 'उ' और 'ले' होगा अर्थात् इस 'उ' को ले। 'उ' ओम् का दूसरा अक्षर है उसे ले, उसे भज, उसकी उपासना कर, उसकी पूजा कर उसमें तन्मय हो जा। यह हुआ लेउआ शब्द का अर्थ।

ओम् (ॐ) के बीच की शाखा सीधी कर डालें, तब यह त्रिशूल (३-) बन जाता है; इसकी आगे की दो शाखाएँ जब सीधी कर देते हैं तब क्रोस (†) हो जाता है। इस क्रोस को एक एक शाखा कर देने से स्वस्तिक (卐) बन जाता है। ओम् के ऊपर का केवल अर्धचंद्र बिंदु रह जाता है तब वह चांदतारा (☽) बन जाता है। यदि उसमें से बिंदु निकाल दें तो द्वितीया-दृज का चाँद (☾) बाकी रह जाता है।

अब 'राम' शब्द समझें। इसका भी ओम् शब्द से कितना साम्य है यह जाँच लें। इसमें 'र', 'अ' और 'म' हैं। राम शब्द

के अक्षरों को अलग करने से यह क्या होता है ? 'र', 'अ' और 'म' । ओम् में जो 'अ', 'उ' और 'म्' तीन अक्षर हैं उनमें से 'अ' और 'म्' इस राम में हैं । परन्तु ओम् में से 'उ' को हटाकर उसकी जगह 'र' रख दिया जाय तो बनेगा राम । 'र', 'अ' और 'म' के मिल जाने से राम हुआ । राम शब्द में ओम् का 'उ' नहीं । जानकारोंने इस तरह सामान्य मनुष्यों को भी उपासना के लिए ओम् दे दिया, परन्तु उसमें से 'उ' निकाल लिया । उसके स्थान पर 'र' रख दिया । अनधिकारी के हाथमें अमोघ शस्त्र न चला जाय - वह बहक न जाय और फिर भी उसे तत्त्व-उपासना का लाभ मिले इसलिए जानकार ऋषिमुनिओंने उसी ओम् के रामनाम में परिवर्तित करके सर्वसामान्य मनुष्यों को दे दिया । इसलिए यदि राम राम होता रहे तो भी उसमें अ एवं म आते रहेंगे ही । इस दृष्टि से देखा जाय तो राम राम करने से भी ओम् के अ और म् की उपासना होगी । और धीरे धीरे अ और म् इन दो अक्षरों की-इन दो मात्राओं की- इन दो पदों की उपासना करते करते अधिकार प्राप्त किया जा सकेगा और क्रम-क्रम से उ को भी प्राप्त कर लिया जा सकेगा । अर्थात् इन तीनों मात्राओं की उपासना का अधिकारी बन सकेगा । आज इस महान रहस्य का प्रकटीकरण हुआ है । राम में किस प्रकार ओम् समाया हुआ है और राम के उपासक भी ओम् के उपासक ही हैं और वे भी इन दो अक्षरों को रट रहे हैं, यह बात आज हम सब समझे । रामनाम का जप करनेवाले भी जाने-अनजाने ओम् का ही जप करते हैं । यदि संकीर्णता से मुक्त होकर रामनाम का जप करेंगे तो उन्हें भी इस रहस्य का पता लगेगा और धीरे धीरे वे भी 'उ' का प्राप्त करके 'अ', 'उ' और 'म्' से बने ओम् और ओम् द्वारा उसका जो सार्थक, उसका जो बोधक है उसे प्राप्त कर लेंगे; समाधिपाद के चौबीस, पच्चीस और छत्वीस वे सूत्रों में जो कहा गया उस अर्थवाले ईश्वर को प्राप्त कर लेंगे; राम राम करते हुए भी "तस्य वाचकः प्रणवः के सच्चे स्वरूप की अनुभूति पा लेंगे । इस तरह ओम् की परिभाषा के व्यावहारिक रूप देकर

बहुत लम्बी कर डाली । शास्त्रीय परिभाषाओं का तो कोई ओरछोर नहीं । यदि परिभाषा शास्त्रीय रीति से लम्बी की जाय तो सामान्य मनुष्य ओम् को नहीं समझ पाएगा । इससे उसे इस ओम् में रुचि नहीं पैदा होगी; और रुचि उत्पन्न न होगी तो वह उसका जप क्यों करेगा ? इसलिए आज यहाँ केदारेश्वर महादेव में, ओम् की टीका का - ओम् की शास्त्रीय परिभाषा को व्यावहारिक रीति से समझाने का प्रयत्न हुआ कि जिससे सर्वसामान्य मनुष्य भी इसे समझकर इसे जपने की रुचिवाले बनें । उन्हें भी ओम् जपने में अभिरुचि पैदा हो ऐसी व्याख्या करने का प्रयत्न किया ।

श्री राम उपनिषद् में कहा गया है कि छियानवे करोड़ रामनाम के जपों के बराबर पचास लाख (रामनाम जप) हैं यदि "राम" को प्रणव से संपुटित - ओम् राम ओम् - किया जाय तो । राम शब्द के आगेपीछे प्रणव जोड़कर पचास लाख बार जपने से वह छियानवे करोड़ बार जपने के बराबर हो जाता है । ओम् का इतना बड़ा महिमा है । इस विषय में एक सुंदर दोहा है :

एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घटघट में बोले ।

एक राम है जगत पसारा, एक राम है सबसे न्यारा ॥

अर्थ : एक राम दशरथ के घर में जन्मे थे वे; दूसरे राम जीवमात्र में बसे हुए हैं वे; तीसरे राम जगत में जो कुछ जड़चेतन का पसारा है वे और चौथे राम इन तीनों से न्यारे-भिन्न हैं; ओम् जिनका बोधक है वे चौथे राम हैं । इसे सच्ची और अच्छी तरह समझें । एक और भी अच्छा दोहा है :

श्वासा से सोहम् बना, सोहम् से ओम्कार ।

ओम्कार से राम बना, साधु करो विचार ॥

अर्थ : चौबीस घण्टों में इक्कीस हजार और छः सौ बार हम साँस लेते हैं । उस साँस के आने-जाने के समय 'सो' और 'हम्' ऐसा ध्वनि होता है । इन दोनों ध्वनि मिलने से 'सोहम्' होता है ।

‘सो’ में से ‘स’ और ‘हम्’ में से ‘ह’ हटा दे’ तो फिर बाकी बच जाता है ‘ओम्’ और ओम् में से राम किस तरह बनता है यह तो ऊपर आ गया ।

तो, आखिर हमें ओम् की आकृति का संक्षिप्त स्वरूप क्या मिला ? बिंदु, कि जिसे प्रत्येक संप्रदायने मान्य किया है । योग की भाषा में जिसे आज्ञाचक्र कहते हैं ऐसी जो त्रिकुटी है (दो भौहें जहाँ मिलती हैं इनके बीच का जो मध्य भाग है उसे त्रिकुटी कहते हैं, वहाँ इडा; पिंगला और सुपुम्णा तीन नाडियाँ मिलती हैं—तीन नाडियों का संगम होता है) वहाँ प्राणों को पहुँचाना बहुत महत्त्वपूर्ण कहा गया है । इन तीन नाडियों का आज्ञाचक्र में जो संगम होता है वही सच्चा संगम है । जहाँ दो भौहें मिलती हैं, उस स्थान को योग की भाषा में आज्ञाचक्र कहा जाता है । दो भौहों के बीच की खाली जगह में हम टीका करते हैं । वहनें भी सुबह उठकर वहाँ लाल बिंदी करती हैं । अब आप सब समझ गये होंगे कि यह लाल बिन्दु क्या है ? ओम् के ऊपर जो बिन्दु है वह यह बिन्दु है— ओम् की आकृति का संक्षिप्त स्वरूप यह बिन्दु है । इस संक्षिप्त स्वरूप को वहनें अपने आज्ञाचक्र में स्थापित करती हैं । यह विवेचन सुनकर अब वहनों के खयाल में यह रहेगा — यह ध्यान में रहेगा कि हम जब भाल पर टीका करती हैं तब क्या करती हैं, तब हम वहाँ ओम् करती हैं, तब हम ओम् को वहाँ स्थापित करती हैं— ओम् की पूजा करती हैं । इस बिन्दु को, इस टीके को व्यावहारिक भाषा में अखंड सौभाग्य का चिह्न कहा जाता है ।

यह बिन्दु अखंड सौभाग्य-चिह्न है । इसे अखंड सौभाग्य का चिह्न क्यों कहा गया ? यह अखंड सौभाग्य का चिह्न है, इन शब्दों की सार्थकता हम किस प्रकार कर सकेंगे ? जगत में, व्यवहार में तो अखंड सौभाग्य किसे हम कहते हैं ? पति की हस्ती को । अपने पति की मौजूदगी में अपने शरीर का विसर्जन हो जाना, पत्नी के

जीते जी पति की मृत्यु न हो, उसे हम अखंड सौभाग्य कहते हैं । भाल पर जो बिन्दु किया जाता है उसे अखंड सौभाग्य का चिह्न कहते हैं । यह मान लिया गया है कि वैसा चिह्न जो करे उसका सौभाग्य अखंड रहता है । किन्तु वास्तव में क्या ऐसा दिखाई पड़ता है ? इस प्रकार सबका अखंड सौभाग्य बना रहता है क्या ? नहीं रहता । किसीका पति पहले चल बसता है, तो किसीकी पत्नी । तो इस तरह न तो पति का अखंड सौभाग्य रहता है, न पत्नी का । तो फिर उसे अखंड सौभाग्य का चिह्न क्यों कहा जाता है ? अखंड सौभाग्य का अर्थ है अच्छा भाग्य—सुभाग्य । सुभाग्य अर्थात् अखंड—खंडित न हो वैसा भाग्य, जो भाग्य अखंड रहे, जो अखंड सुख—शांति दे । केवल पति जीते हों तो उससे अखंड सौभाग्य है क्या ? क्या तब दुःख नहीं आता ? पति के होते हुए दुःख, रोग, अशांति अथवा आघात—अफसोस नहीं आते क्या ? अनेक प्रकार की विडम्बनाओं से गुजरना नहीं पड़ता क्या ? तो फिर अखंड सुख—अखंड सौभाग्य कहाँ रहा ? इसलिए अखंड सौभाग्य को हमें अब अन्य रीत से समझना होगा । मात्र पत्नी या पति की हस्ती यह अखंड सौभाग्य नहीं । परन्तु अखंड सौभाग्य यानी तमाम विडम्बनाओं से, सब त्रास से, सब दुःखों से, संपूर्ण क्लेशों से नितान्त मुक्त हो जाने का नाम । और जिस अखंड सौभाग्य को पा जाने के बाद उसमें कदापि खंड न आये, वह कभी चला न जाये उसका नाम अखंड सौभाग्य । जिसका नाम ओम् है उसका सच्चा ज्ञान, उसके ज्ञानकी प्राप्ति, उसकी शरणागति वह है अखंड सौभाग्य । ओम् के ऊपर का जो बिन्दु, जिसे भाल में स्थापित किया, उसे हमने अखंड सौभाग्य का चिह्न कहा । अब समझ जायेंगे कि बिन्दी का अर्थ क्या है और अखंड सौभाग्य का मतलब क्या है ? अखंड सौभाग्य का मानी है, चाहे पति हो या न हो, चाहे पत्नी हो या न हो परन्तु इस बिन्दु के जरिये उस ओम् की प्राप्ति, ओम् की याद और याद के द्वारा ओम् जिसका नाम है उस सत्ता—उस चैतन्य की प्राप्ति, उसका ज्ञान और उस ज्ञान का सात्त्विक, उस ज्ञान की अखंडितता । इसलिए वह

अखंड सौभाग्य का चिह्न है । यह बात भी, यह रहस्य भी आज यहाँ पहली बार ही टेप हो रहा है; आप सभी पहली बार ही सुन रहे हैं । यह रहस्य कहीं भी, किसी भी जगह सुनने को नहीं मिल सकता, न किसी पुस्तक में पढ़ने को । अब के बाद यह टेप जहाँ सुनी-सुनाई जाएगी वहाँ वहाँ इस रहस्य का पता लगेगा । इस तरह हमने ओम् की व्यावहारिक व्याख्या की । आज तक जो शास्त्रीय व्याख्याएँ हुई हैं वैसी यह नहीं । शास्त्रीय व्याख्या तो बड़े विद्वान पुरुष ही समझ सकते हैं । अत्यन्त बुद्धिगम्य व्याख्याएँ तो जो बड़े कुशाग्र, प्राज्ञ, मेधावी, बुद्धिमान हैं वे ही समझ सकते हैं । शास्त्रीय व्याख्याएँ हैं अति सुंदर परन्तु वे सर्वसामान्य मनुष्यों की समझ में नहीं आ सकती । इसलिए ओम् की यह व्याख्या बहुत व्यावहारिक रीत से कही गई ।

ज्ञानेश्वर महाराज हुए जिन्होंने ज्ञानेश्वरी गीता लिखी है । मूल गीता संस्कृत में होने से सर्वसामान्य मनुष्य उसे समझ नहीं पाते थे । इस वजह से उनके बड़े भैया निवृत्तिनाथ कि जिन्होंने वे अपने गुरु मानते थे, उन्होंने ने कहा, “इस संस्कृत गीता को सर्वसामान्य मनुष्य भी समझ सके वैसी भाषा में (मराठी में) तुम लिखो । इसलिए आज्ञा शिरोधार्य की और ज्ञानदेवजीने गीता मराठी में रूपांतरित की । उसी का नाम है “ज्ञानेश्वरी” गीता, जिसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । उसमें गीता में चर्चित बातें ही कही गई हैं परन्तु उनका निरूपण इतने बहुतसे उदाहरण, दलील एवं दृष्टांतों से और ऐसी सरलता से किया हुआ है कि सर्वसामान्य मनुष्य भी अच्छी तरह समझ सके । यहाँ ऐसा तो हमने कुछ नहीं किया परन्तु ओम् के व्यावहारिक व्याख्या के रूप में समझाने का एक मामूली, अति अल्प प्रयास किया । सर्व-साधारण मनुष्य भी ओम् के सरलता से समझ सके उस रीत से समझाने की कोशिश की । योगशास्त्र का प्रारम्भ करते समय हम दीर्घ प्रणवोच्चार करते हैं । वह प्रणवोच्चार करते समय ओम् से सम्बन्धित उपरोक्त समूची बातें हमें याद आ गईं और इस कारण आज उसके विषय में

बहुत कुछ बातें कर डालीं । इसमें से आप सबको बहुत ही जानने-समझने का मिला होगा और जो भी यह सुनेंगे उन्हें भी बहुत ही मिलेगा ।

ज्ञानेश्वर नाम ही गहरे ज्ञान का सूचक है । ज्ञानेश्वर सहित वे चार भाईबहन थे—सोपानदेव, निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर और उनकी बहन । बहन का नाम था मुक्ताबाई । ये चारों नाम भी कल्याण-पथ के सूचक हैं, कल्याण का बोध कराए ऐसे कल्याणबोधक शब्द हैं । सोपान मानो सीढ़ी । एक के बाद एक सोपान-सीढ़ियाँ चढ़ो, फिर ज्ञानकी प्राप्ति करो और ज्ञानेश्वर बनो । हर सीढ़ी, हर ज्ञान की प्राप्ति करो और निवृत्ति के अधिकारी बनो—निवृत्तिनाथ बनो । निवृत्ति के नाथ, प्रवृत्ति के नाथ नहीं । फिर निवृत्ति के नाथ बन कर कहाँ बस जाओ ? मुक्ता में । मुक्ति की प्राप्ति कर लो । निवृत्ति के अधिकारी होकर कैवल्य प्राप्त कर लो, मुक्तानन्द बन जाओ, नित्यानन्द बन जाओ, अस्तु ।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

भावार्थ—

उसका (प्रणव का) सार्थक जप किया जाय ।

विस्तार—

अट्टाईसवाँ सूत्र क्या कहता है ? अर्थ सहित ओम् का जप किया जाय । योगदर्शन में अन्य कोई एक भी मंत्र नहीं दिया है । उसमें अन्य एक भी मंत्र के जप की बात नहीं है । योगदर्शन तो किसकी सिफारिश करता है ? ओम् का जप करो, ओम् का । भाईओ ! बहनो ! ओ कल्याणपथ के पथिको ! यदि आपका सच्चा पथ ग्रहण करना है, कल्याण प्राप्त करना है, कैवल्य पाना है, तमाम विघ्नों को हटा देना है, तमाम अंतरायों को भगा देना है तो आप ओम् का जप करें । किस तरह ? अर्थ की भावना के साथ ।

अर्थ की भावना सहित ओम् का जप किया जाय । कौन-सा अर्थ ? अर्थ की भावना के साथ जप करने को कहा । केवल ओम्-ओम्-ओम् नहीं परन्तु ओम् का जो अर्थ है, जिसे पहले तीन सूत्रों

में प्रतिपादित किया है कि जिन्हें क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासना नहीं, जो संपूर्ण सर्वज्ञ हैं और तीनों काल के गुरुओं के भी गुरु हैं और जिन्हें काल छेद-भेद नहीं सकता, वल्कि जो काल को भी खा जाते हैं । यह हुआ अर्थ । यह भावना रहना जरूरी है । जब-जब हम ओम् का जप करने लगें तब-तब हमारे ध्यान में, हमारे स्मरण में यह बात रहना आवश्यक है कि जैसे ओम् का मैं जप और रटन करता हूँ । ऐसे का मानी क्या ? पहले जो अर्थ कह दिया वह । जैसे अर्थ की भावना के साथ जप करना चाहिए । सार्थक जप करने से क्या फल मिलता है ?

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

भावार्थ—

इस (सार्थक जप) से सर्वव्यापक चेतना की अनुभूति हो सकती है और अंतरायों को रोके जा सकते हैं ।

विस्तार—

ओम् के (सार्थक) जप से, सर्वव्यापक चेतना की भावना के साथ जप करने से, प्रत्यक् चेतना मानी सर्वव्यापक चेतना का साक्षात्कार होता है और अंतराय हट जाते हैं । ओम् का सार्थक जप करने से, अर्थ की भावना के साथ जप करने से जो प्राप्ति होती है, जो फल मिलता है वह यहाँ कहा गया । साधना में आनेवाले सब विघ्न भी सार्थक जप से नाबूद् हो जाते हैं । सार्थक जप यानी पहले तीन सूत्रों में कहा हुआ अर्थ स्मरण में रखकर किया हुआ जप ।

ओम्....

ओम्....

ओम्....

(पू. योगभिक्षुजी की पुस्तिका “प्रणवबोध षट्सूत्रों” का सारभाग नीचे दिया जाता है । जहाँ कहीं पुनरुक्तियाँ प्रतीत हों तो वे समझ की दृढ़ता के लिए हैं ऐसा समझें ।)

क्लेशों, कर्मों, कर्मफलों एवं वासनाओं से जो सदा संपूर्ण मुक्त है ऐसे विशिष्ट चैतन्य को ईश्वर कहते हैं, वे ईश्वर हैं। क्लेशों, कर्मों, कर्मफलों और वासनाओं से जो संपूर्ण मुक्त नहीं वह ईश्वर नहीं हो सकता। उसे ईश्वर नहीं कहना चाहिए। अन्य कुछ कहना हो तो वह भले ही कहो। सर्वसामान्य मनुष्य की अपेक्षा किसी मनुष्य में शक्ति, बल, तन्दुरस्ती अधिक हों और उसे जाते देख यदि कोई यह कहे कि 'हार्थी जा रहा है'। तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि वारतव में लंबी सूँढ़, चार पैर, बड़े कानवाला और अपनी शक्ति से बड़े बड़े पेड़ समूल खींच डालनेवाला जो 'पशुविशेष' हार्थी है वह जा रहा है। परंतु 'हार्थी जा रहा है' इसका अर्थ मात्र इतना ही होता है कि सर्वसामान्य मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक ताकतवर मनुष्य जा रहा है। इस तरह किसी जरा अधिक बल-शक्ति व गुणवाले मनुष्य के लिए यदि ईश्वर या अन्य ईश्वरसूचक शब्द अति प्रेम के कारण उपयोग में लाये जायँ तब २४ वें से २९ वें सूत्रों में जिनका वर्णन है वे ईश्वर उन्हें नहीं समझना चाहिए। क्लेश, कर्म, कर्मफल एवं वासनाओं से जो मुक्त है ऐसा विशिष्ट चेतन तो मात्र एक ही है—एक एवं अद्वितीयम्। वे ईश्वर (२४ वें से २९ वें सूत्रों में जिनका वर्णन है ऐसी विशेषतावाले) तो उपरोक्त चार (क्लेशों, कर्मों, कर्मफलों एवं वासनाओं से युक्त) शरीरसहज कमजोरियों से परे हैं। उन्हें तो किसी प्रकार के लीलातनुओं-लीलाशरीरों को भी धारण करने की आवश्यकता नहीं होती।

महर्षि पतंजलि इससे भी अधिक स्पष्ट पहचान ईश्वर की दे रहे हैं। उपरोक्त ईश्वर में सर्वज्ञता का निरतिशय बीज मौजूद है। निर्+अतिशय अर्थात् अधिक से अधिक, इतना अधिक कि जिससे अधिक हो ही नहीं सकता। अति अधिक की चरम सीमा तक का। जिससे आगे और न हो इतनी सर्वज्ञता तो ईश्वर में एक बीज के रूप में—एक बिन्दु के रूप में मौजूद है। उन ईश्वर की सर्वज्ञता से अधिक या उनके बराबर सर्वज्ञता किसीमें हो नहीं सकती।

प्रातःस्मरणीय महर्षिजी ईश्वर की पहचान और भी अधिक दे रहे हैं। पूर्वकाल में जो जो गुरुजन हुए, वर्तमान में जो जो गुरुजन जीवित हैं और भविष्यकाल में जो जो गुरुजन होंगे, उन सब गुरुजनों के भी वे ईश्वर गुरु हैं। और उन ईश्वरगुरु को काल कुछ भी नहीं कर सकता; काल उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता; काल उन ईश्वरगुरु को छेद-भेद नहीं सकता; काल उन ईश्वरगुरु को छू भी नहीं सकता। ईश्वरगुरु के सिवा अन्य तमाम गुरुजनों को काल के नियम से चलना पड़ता है। भूख, प्यास, बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म-मृत्यु आदि के कालक्रम के आधीन उन्हें रहना पड़ता है, जबकि काल, ईश्वरगुरु के आधीन रहता है। ऐसे हैं ईश्वरगुरु।

जनकल्याण के भेखधारी योगप्राचार्य, ईश्वर के सच्चे स्वरूप के बारे में हमें अति अल्प भ्रमणा में भी रहने देना नहीं चाहते। आगे वे कहते हैं कि उन ईश्वर का वाचक प्रणव (ओम्=ॐ) है। उन ईश्वर का नाम प्रणव है, ओम् है। उपरोक्त तीनों सूत्रों में जो कहा गया है वह इस तरह है—

ईश्वर एक ऐसा विशिष्ट (विशेषतावाला चैतन्य है कि जो विशेषता अन्य किसीमें भी नहीं हो सकती) चैतन्य है कि जिनमें क्लेश, कर्म, कर्मफल एवं वासनाएँ किसी भी समय नहीं, किंचित्मात्र भी नहीं। और उनमें संपूर्ण सर्वज्ञता है। और वे पूर्वकाल, वर्तमान काल और भविष्यकाल के सभी गुरुजनों के भी गुरु हैं। अन्य सब गुरु काल के वश में हैं जबकि काल ईश्वर के वश में है।

उपरोक्त तमाम जिनमें हों उनका — उस परम तत्त्व का, वातचीत की सरलता के लिए कोई नाम होना जरूरी है न? हाँ, उनका नाम है प्रणव—ओम्—ॐ। ओम् शब्द ईश्वर का वाचक, बोधक और द्योतक है। ओम् अर्थात् ईश्वर, और ईश्वर अर्थात् ऐसे प्रकार का विशेषचेतन

जिसमें क्लेश, कर्म, कर्मफल एवं वासनाएँ त्रिकाल में भी नहीं हैं, किंचित्मात्र भी नहीं और उनमें सर्वज्ञता है। इसके अतिरिक्त वे तीनों कालों के गुरुओं के भी गुरु हैं और उन्हें काल का कोई भी नियम अड़चन नहीं कर सकता। ओम्....ओम्.... ओम्...बोलते समय उपरोक्त अर्थबोध ध्यान में रखा जाय। यदि कोई मनुष्य बम्बई कुछ समय ठहर कर अपने गाँव लौटता है और बम्बई में उसने चौपाटी, ताजमहल, पालवा बंदर, कालवादेवी इत्यादि भलीभाँति देखे हैं तो वह अपने मित्र से, बातचीत में जब जब बम्बई की बात आये, बम्बई की बात करे तब तब वह यदि इस प्रकार कहे, “चौपाटी पालवा, कालवादेवी, ताजमहल वगैरह वगैरह जहाँ हैं वह जगह”; जब भी “बम्बई” नाम का उपयोग करना हो तब ‘चौपाटी, ताजमहल वगैरह वगैरह जहाँ हैं वह जगह’ इस तरह कहता रहे तो बातचीत में बहुत कठिनाई हो, निरर्थक कालव्यय हो ओर फिर भी पूर्ण अर्थबोध नहीं हो सकेगा। परन्तु ‘चौपाटी, ताजमहल, वगैरह जहाँ हैं वह जगह’, ऐसा न कहकर उसके विशाल अर्थ का बोध करा सके ऐसा छोटा (लघु) नाम ‘बम्बई’ कहे तो कितनी सरलता हो! ‘बम्बई’ नाम का अर्थ समझने में कितनी सरलता हो! इसलिए २४ वें से २९ वें सूत्रों तक का सरल बोध कराने के हेतु ‘ओम्’ शब्द चुना गया है। इन २४ वें से २९ वें सूत्रार्थ की लघुलिपि (शॉर्टहेन्ड) ओम् है। एक अन्य बात भी समझ लें। इस अर्थबोध के लिए ओम् शब्द ही क्यों? अन्य शब्द क्यों नहीं? इसका स्पष्टीकरण यह है— इस ओम् शब्द का उपयोग पूर्वकाल से होता आया है। उन ईश्वर के लिए अगर सब अपना अपना मनपसंद शब्द, नाम निश्चित करने की स्वतंत्रता बरतने लगे, तो उनके अर्थ बोध की सरलता की अखंडितता सुरक्षित नहीं रह पाएगी और इस वजह बहुत ही घोटाला होने की पूरी संभावना होगी। ऋषिमान्य ऐसे ओम् को ही ईश्वरवाचक के रूप में सबके मान्य रखने से अर्थबोध की सरलता की अखंडितता सुरक्षित रहती है।

महर्षि और भी अधिक प्रकाश डाल रहे हैं । वे कहते हैं कि ओम् का सार्थक जप करना । ओम्....ओम्....ओम्....पुनः पुनः रटना यह उसका जप है किन्तु ओम्....ओम्....ओम्....पुनः पुनः रटते समय जो उसका मुख्य अर्थ है उसे खयाल में रखा जाय, अर्थ की भावना के साथ जप किया जाय । जप करते समय अर्थ का विस्मरण मत होने देना । कौन-सा अर्थ ? किस अर्थ की भावना की जाय ? किस अर्थ का विस्मरण नहीं होने दे ? इस प्रकार अर्थ की भावना की जाय :-

ओम् अर्थात् ईश्वर, ईश्वर अर्थात् एक ऐसा विशिष्ट चैतन्य कि जिन में क्लेश, कर्म, कर्मफल एवं वासनाएँ सदाकाल के लिए नहीं, किंचित्मात्र भी नहीं; उनमें सर्वज्ञता है; वे पूर्वकाल के, वर्तमानकाल के और भविष्यकाल के गुरुओं के भी गुरु हैं और वे काल से हमेशा अस्पृश्य हैं । ओम् का जप करते समय उपरोक्त भावना की जाय, रखी जाय ।

कोई भी मनुष्य लाभ-प्राप्ति की कुछ भी संभावना के बिना किसी प्रवृत्ति में प्रवृत्त नहीं होता । इस ईश्वरवाचक ओम् का सार्थक जप करने से क्या लाभ होता है ? आर्य संस्कृति के केन्द्रविन्दु में विराजित अखंड भूमंडलाचार्य श्री पतंजलि इस सम्बन्ध में भी कहते हैं, ओम् का सार्थक जप करने से आत्मसाक्षात्कार (चेतन तत्त्व के विषय में सत्य समझ, सत्य परिचय) होता है । इसके अतिरिक्त साधना में, जीवनसाधना में आते अंतरायों-विघ्नों का नाश हो जाता है ।

ओम्....ओम्....ओम्....

किसी भी कार्य के प्रारम्भ एवं अंत में तीन बार प्रणवोच्चार करना चाहिए । तीन ही बार क्यों ? एक ओम् मेरे (बोलने वाले के) कल्याण के लिए, दूसरा ओम् तुम्हारे (सुननेवाले के) कल्याण के लिए और तीसरा ओम् अन्यो के (वक्ता और श्रोता के सिवा अन्य तमाम के) कल्याण के लिए बोलना है ।

ओम्....ओम्....ओम्....

काम आदि अचूक देनेवाला मंत्र “ओम्”

आमजनता में यह खयाल प्रचलित है कि ओम् मंत्र का जप करना केवल त्यागी और संन्यासी लोगों को उचित है; क्योंकि इससे काम और अर्थ की सिद्धि (प्राप्ति) नहीं होती। वास्तव में ऐसा तनिक भी नहीं। “ओम्” सभी मंत्रों का नायक है; सभी मंत्रों में प्रवेश पाने के लिए यह सेतु के समान है और सब (चारों पुरुषार्थ) दे सकता है। इसलिए कहा जाता है,

मंत्राणां प्रणवः सेतुः ।

मांगल्यं, पावनं, धर्म्यं, सर्वकामप्रसाधनम् ।

ओम्कारः परमं ब्रह्म, सर्व मंत्रेषु नायकम् ॥

नदीपार के गाँवों में जाने के लिए जिस तरह सेतु का सहारा लेना ही पड़ता है उसी तरह हर प्रकार के मंत्र का सही और संपूर्ण लाभ पाने के लिए उसमें प्रवेश के पूर्व “ओम्” का आश्रय लेना पड़ता है। जिस तरह महाबलवान सैन्य भी विना नायक के पंगु होता है उसी प्रकार “ओम्” रहित मंत्र भी पंगु है अर्थात् यथायोग्य सफल नहीं हो सकता। मंगल, पवित्र और धार्मिक आदि सभी कार्यों में ओम् ‘प्रसाधनम्’ है अर्थात् निःसंशय फल देनेवाला है। सुबह से शाम तक हमारी दिनचर्या में अधिकतर हमारे कार्य मंगल, पवित्र और धार्मिक होते हैं।

ओम्कारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः ।

कामदं मोक्षदं चैव ओम्काराय नमो नमः ॥

विन्दु से संयुक्त ओम् का नित्य ध्यान करके योगीजन काम और मोक्ष प्राप्त करते हैं; ओम्कार को नमस्कार है, नमस्कार है।

‘काम’ में अर्थ का जौर ‘मोक्ष’ में धर्म का समावेश हो ही जाता है। क्योंकि काम के सिवा अर्थ की और धर्म के सिवा मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। इस तरह ओम् भी धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला है यह बात टोल पीट कर कह दी। ओम् के पूजा,

ध्यान, जप, स्मरण इत्यादि करने का हर किसीको अधिकार है। यह अमुक से किया जा सकता है और अमुक से नहीं ऐसी रूढ मान्यता उपरोक्त श्लोक से नष्ट हो जाती है।

निखिल भूमंडल योगप्राचार्य पू. पा. पतंजलि ने ओम् को ईश्वर का मुख्य नाम कहकर इसका जप करने को कहा है। उनका कहना है कि अर्थ की भावना के साथ ओम् का जप करने से चैतन्य का साक्षात्कार होता है और सब अंतराय हट जाते हैं।

जीवन भी एक बहुत बड़ी साधना है। यह साधना निर्विघ्न पूरी हो यह सभी चाहते हैं। इसलिए ओम् सब के लिए अत्यंत उपयोगी है।

राम उपनिषद् में कहा गया है कि रामनाम के आगेपीछे ओम् जोड़कर (यथा-‘ओम् राम ओम्’) पचास लाख बार जपने से वह छियानवे करोड़ जपों के बराबर हो जाते हैं। ओम् की महिमा जितनी हम गाँ उतनी कम है। अनंत शास्त्रों में ओम् की अनंत महिमा गायी गई है। उसमें से कुछ नीचे दी जाती है।

- (१) ओम् ब्रह्म है। (तै. शी. ८)
- (२) देह के नीचे की अरणी और ओम् के ऊपर की अरणी बनाकर बारबार घर्षण करके छिपे अग्नि की तरह परम ज्योति (परमात्मा) को (ओम् के) ध्यानरूप मथानी द्वारा प्रकट करके देखो (श्वे. १/४)
- (३) जो पुरुष ओम्-एकाक्षर ब्रह्म (अर्थात् परमात्मा) का नाम लेते लेते और चिंतन करते करते शरीर छोड़ता है उसे परम गति प्राप्त होती है (गीता ८/१३)
- (४) जिस प्रकार दुग्ने से सभी पत्ते व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार ओम्कार से संपूर्ण वाणी व्याप्त है। (श्री. छां. ३.)
- (५) शिव, रुद्रादि अनेक नामों में ओम् श्रेष्ठ है।

(श्री लिंग पु.)

- (६) लक्ष्मीबीज श्रीं, मायाबीज ह्रीं, कामबीज क्लीं, वाग्बीज अँ और शक्तिबीज सः से भी जगत का कारण परमात्मा-बीज ओम् श्रेष्ठ है । (पा. यो. र दी.-११९)
- (७) परमात्मा का नाम ओम् है । इसके द्वारा स्मरण करने से वे प्रसन्न होते हैं । (यो. या. र. दी.-११९)

किसी भी कार्य के प्रारम्भ में तीन बार ओम् का उद्घोष हो-किया जाय तो उत्तम है—प्रथम प्रणवोच्चार बोलनेवाले के, दूसरा सुननेवाले के और तीसरा सबके कल्याण के लिए ।

‘श्वासा से सोहम् बना, सोहम् से ओम्कार ।
ओम्कार से राम बना, साधो करो विचार ॥

ऐसा माना जाता है कि प्रश्वास निकलते समय हम् और श्वास लेते समय सः जैसे ध्वनि होते हैं और उनका धारावाहिक जप होते ही वह सोहम् हो जाता है । “सो” में से स और ‘हम्’ में से ह निकाल दिया जाय तो बाकी ओम् रह जाता है । ओम् में अ, उ और म् हैं और राम में र, अ और म हैं । राम के जप के परिपक्व काल में र का लोप हो जाता है और उसमें उ अवतरित हो जाता है । इस प्रकार “राम” ओम् का रूप धारण कर लेता है ।

एक राम दशरथ-घर डोले, एक राम घटघट में बोले ।

एक राम है जगत-पसारा, एक राम है सबसे न्यारा ॥

पहले तीन रामों के अनुशासन में रहते हुए चौथे ‘सबसे न्यारे राम’ को प्राप्त किया जाय, अर्थात् सच्चे ढंग से समझ-बूझ लें । चौथे राम को पहचान लेना ही समग्र साधनाओं की मुख्य प्राप्ति है ।

इस तरह सभी लोग निःशंक होकर ओम् का जप कर सकते हैं और उसके द्वारा चारों परम पुरुषार्थों की प्राप्ति भी कर सकते हैं ।

ओम् मंत्र तो जगत के नवसर्जनरूप आदि कारण का आदि कार्य है—

इसलिए यह स्वयंभू, स्वयंस्फुरित-प्रेरित, स्वयंसर्जित-अर्जित-अर्चित, पूरा स्वाभाविक और मज्जागत है। सच देखा जाय तो ओम् ध्वन्यात्मक है इसलिए यह अनुभूति का विषय है। वर्णात्मक जप तो इसकी ध्वन्यात्मकता को जगाने में सहायभूत है।

जिस तरह प्रज्वलित दीपक का भी एक खास ध्वनि होता है उसी तरह (प्रज्वलित) आत्मा का, चैतन्य के अस्तित्व का भी एक दिव्य, अलौकिक, मस्त-दोलंत ध्वनि है। उसे क्या नाम दिया जाय ? उसका वर्णन कैसे करना ? उसके यथायोग्य वर्णन के वास्ते सभी अक्षर छिछले जान पड़ते हैं और सभी शब्द दरिद्र लगते हैं। उसे समझाने के प्रयत्न में नव-नवीन अप्रचलित शब्दसमूह प्रगट करने का लोभ धमता नहीं और ऐसा करने से प्रचलित विद्वद्भोग्यता का क्या हाल होगा ? यह विचार अकुलाकर धर्मसंकट में डाल देता है। फिर भी संतोष इस बात का है कि जिज्ञासुओं को इतने प्रकटीकरण से भी यथाशक्ति अभिव्यक्त कथन के द्वारा अव्यक्त कथनरूप अध्याहार का भी सहारा मिल जायगा और इससे वे नेति नेति कहकर “इति” को व्यक्त करने की आत्मवंचना कर सकेंगे। नेति, नेति, नेति....

ओम् की आकृति नैसर्गिक है।

जिस तरह क, ख, ग, इत्यादि ध्वनियों के लिए क, ख, ग वगैरह आकृतियाँ निश्चित की गई हैं, उसी प्रकार ओम् के लिए ऐसी (ॐ) आकृति प्रचलित जो है वह नैसर्गिक है; कपोलकल्पित नहीं। कल्प के प्रारंभ में स्थूल संरचनाकी क्रिया की जो सूक्ष्मतम ध्वनि लहराती है उसकी ऐसी (ॐ) आकृतियाँ संगठित होती हैं और ऐसी असंख्य-अनंत आकृतियों से विश्वाकाश भरकर लोल-हिल्लोलमय होने लगता है। उस समय वे आकृतियाँ इन्द्रियगोचरत्व को प्राप्त हुई नहीं होती, परन्तु “ऋतंभरा प्रज्ञागोचर” होती हैं। जिस तरह तालाब के जल में कंकरी गिरते उसमें एक लोल-लहर का वर्तुल उठता है और उसकी गोलाकृति विस्तृत होकर किनारे की ओर बढ़ती है; जल में चारों ओर कंकरियाँ गिरने से अनंत वर्तुल उठते हैं, किनारे की

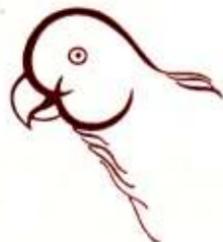
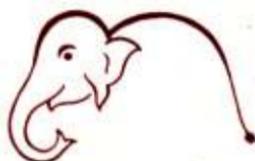
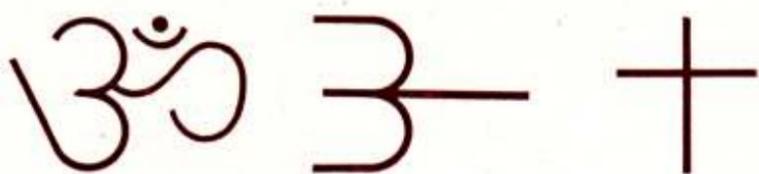
ओर बढ़ जाते हैं और आपस में टकराकर-समाकर विलीन हो जाते हैं, उसी तरह विश्वनवसर्जन के समय ॐ की आकृतियों का भी होने लगता है और इस प्रकार जगत का स्थूल नवसर्जन तबक्कों में आगे बढ़ता है। ॐ आकृति पहले तबक्के में गणपति की आकृति से और दूसरे तबक्के में हनुमानजी की आकृति से मिलती-जुलती हो जाती है। इस प्रकार तबक्कावार क्रमपूर्वक परिवर्तन पाती हुई वह आकृति वर्तमान विश्व का अनंत वैविध्य धारण करती है। स्थिर जल में कंकरी पड़ती है तब उसमें प्रथम अगोचर स्पंदन उठता है वह बिंदु-स्वरूप (●) की आकृति का होता है। इस प्रकार विश्व की सब की सब आकृतियों का आदि स्वरूप बिंदु है। नीचे के सब सांकेतिक चिह्न भी बिंदु में से विकसित हुई ॐ की आकृति के स्वरूप ही हैं।

ॐ (ओम्), ॐ- (त्रिशूल), † (क्रोस), 卐 (स्वस्तिक), ॐ (चाँदतारा), ॐ (दूज)। मनुष्य-आकृति में भी ओम्-आकृति की उलट-सूट दो फाँके जुड़ी हुई हैं। सौभाग्य-चिह्न के रूप में वहनें भाल में टीका करती हैं वह भी बिंदु ही है। कुछ संप्रदायों में भी सांकेतिक चिह्न के लिए बिंदु भाल में धारण करने का रिवाज है। सूर्य, चंद्र, तारे, पृथ्वी वगैरह की आकृतियाँ भी गोल-स्वरूप हैं।

कुछ भी लिखने के प्रारंभ में जिस समय कलम कागज पर रखी जाती है तब प्रथम बिंदु ही उभरता है, बिंदु ही स्थापित होता है और ऐसे अनंत बिंदुओं के सुचारु स्वरूप बनते हैं अक्षर और शब्दसमूह।

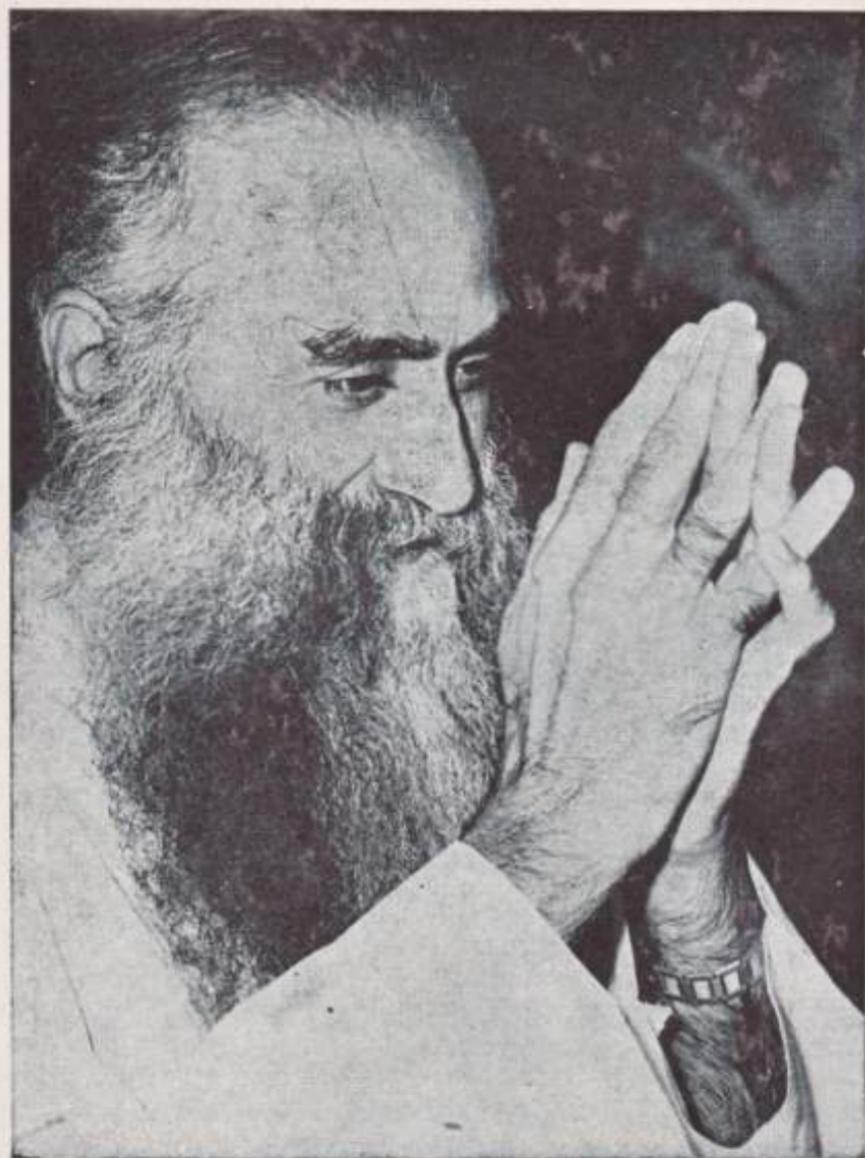
संशोधक, जिज्ञासु, ज्ञानपिपासु और सात्त्विक आनंद की प्राप्ति के ग्राहकों के लिए यहाँ मौलिक चर्चा करने का केवल प्रयत्न किया गया है; शास्त्रार्थ या हारजीत की भावना या बुद्धि के प्रदर्शन के लिए नहीं। तात्त्विक एवं प्रामाणिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो सचमुच ही मौलिकता जैसा कुछ भी इस जगत में है ही नहीं; फिर भी हम सब अपने हठाग्रह को सत्याग्रह का लेबल लगाकर मौलिकता का प्रतिपादन करने के लिए कच्छ कस कर कूद पड़े हैं।

: सर्वाकृति-दर्शक प्रणव-पट्ट :



त्रिशूल, क्रोस, स्वस्तिक, दृज, सितारा, बिंदु, शिवालिंग इत्यादि की आकृतियाँ, ओमाकृति के ही परिवर्तित-परिवर्धित-स्वरूप हैं यह यहाँ दिखाया गया है। गणपतिजी, हनुमानजी, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि की आकृति में भी कहाँ कहाँ ओमाकृति के कुछ अंश दिखाई देता है यह चौड़ी रेखाओं से बताया गया है।

यह सारा प्रयत्न जिज्ञासा की तृप्ति और सात्विक आनंद के लिए किया गया है, वाद-विवाद के लिए नहीं।



प. प. गुरुदेव श्री योगभिक्षुजी

ओम् की आकृति के ऊपर का बिंदु ओम् आकृति का संक्षिप्त स्वरूप है । विश्व की सभी आकृतियाँ एवं ध्वनियाँ विश्वरचना के आदि कारण के आदि कार्य के रूप में अस्तित्व में आये हुए बिंदुरूप आदि आकृतियों के और दीर्घ प्रणवोच्चार स्वरूप आदि ध्वनियों के विकसित, वर्धित-परिवर्धित स्वरूप ही हैं और वे विश्व के तमाम जड़चेतन के साथ ओतप्रोत हैं, अनुस्यूत हैं ।

ओम् के ऊपर के बिंदु का अर्थ है अंदर से ठोस गोल आकृति (●) । ओम् के ऊपर ऐसी चौरस (■) आकृति बिंदु नहीं कहलायेगी । गोल आकृति असीमता की द्योतक है । ओम् आकृति यदि बिंदु से संयुक्त नहीं होती है तो वह ईश्वरवाचक नहीं रहती ।

बिंदु रहित ओम् भी यदि अपना ईश्वरवाचकत्व खो बैठता है तो फिर बिंदु रहित मनुष्य का मनुष्यत्व बच ही कैसे सकता है ? बिंदु रहित-वीर्यशून्य-असंयमी मनुष्य जन्म से मनुष्य होने पर भी गुण-कर्म से पशुकोटि में पतन का प्राप्त होता है । बिंदु-वीर्य-उत्साह रहित मनुष्य का जीवन शव-तुल्य है और इसलिए वह देश और राष्ट्र के लिए भारी बोझ समान बन जाता है । निम्नोक्त श्लोक में ये दोनों अर्थ भरे हुए पाये जाते हैं—

ओम्कारं बिंदुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः

और

ओम्कारं,

बिंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः

इसका अर्थ इस तरह किया जाय तभी यह रहस्य खुल सकेगा—

बिंदु से युक्त-संयुक्त ओम् का, बिंदु से युक्त-संयुक्त योगीजन नित्य ध्यान करके धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ प्राप्त कर लेते हैं । इस श्लोक में गा-बजाकर चेतावनी दी गई है कि बिंदु से संयुक्त ओम् की उपासना उसके उपासक के भी बिंदु से संयुक्त होकर ही करनी चाहिए । जैसे अ स्वर के बिना किसी व्यंजन का अस्तित्व नहीं, वैसे बिंदु से संयुक्त हुए बिना कोई भी साधना-

उपासना सफल नहीं हो सकती। जीवन भी एक बहुत जबरदस्त और मूल्यवान साधना है। जीवमात्र की स्थूल-सूक्ष्म तमाम क्रियाओं-प्रवृत्तियों में बिंदु का क्षरण होता है, बिंदु की सहायता मिलती है। बिंदु से संयुक्त ओम् की उपासना बिंदु से संयुक्त रहने की सतत याद दिलाया करती है और इस तरह बिंदु का संवर्धन किया करती है।

ऐसे सूक्ष्म एवं गहन रहस्य यदि थोड़े भी समझ में आये तो ही हम संकीर्णता, कट्टरता एवं सांप्रदायिकता से मुक्त हो सकेंगे। ऐसी सूक्ष्म समझ - स्फटिक-सी समझ पाने का प्रयत्न करना और दूसरों को भी देने में भी प्रमादशून्य रहना यह भी विश्वशांति के लिए एक प्रकार से महामंत्र ही है।

जैसे स्थिर जल में गोलाकृति हिल्लोर-हिल्लोल उठने में कंकरी का गिरना निमित्त है, वैसे त्रिगुण की साम्यावस्था में "एक हूँ, बहुत बनूँ; एक हूँ, अनेक बनूँ; एकविध हूँ, बहुविध बनूँ" ऐसा जो अदम्य-अगम्य-अगोचर भावोद्रेक है, वह बिन्दु के उद्गम-उद्भव का निमित्त बनता है और इस तरह जगत ओम्-आकृति प्राप्त करके सनाथ बनता है। इस तरह जड़-चेतन की सभी आकृतियों की उत्पत्ति का मूल आधार तो बिन्दु है। बिन्दु का क्रमिक विकास ही सब आकृतियों के स्वरूप हैं। सूत्र जिस तरह मनकों में अनुस्युत रहकर माला को सुगठित-सुव्यवस्थित रखता है उस प्रकार ओम्-ध्वनि एवं आकृति विश्वब्रह्मांड की समस्त ध्वनियों एवं आकृतियों को रखती हैं। नाम, रूप (आकृति) और ध्वनि को छोड़ देने पर जगत का लोप हो जाता है।

जब किसी सामान्य विषय को भी संपूर्णतः सांगोपांग प्रस्तुत करने की क्षमता मनुष्य में नहीं तो फिर ऐसे गहनतम विषयों के बारे में संपूर्णतः कह सकने का सामर्थ्य है किसमें? आत्मा यदि परमात्मा के विषय में सांगोपांग कह सके तो वह आत्मा, आत्मा कैसे? और वह परमात्मा, परमात्मा कैसे? यदि जीव, शिव के बारे में; यदि लघु, गुरु के विषय में सांगोपांग कह सके तो फिर शिव, शिव कैसे? जीव, जीव कैसे? लघु, लघु कैसे

और गुरु, गुरु कैसे ? फिर भी “आजिजी-अस्तुति प्रभु के प्यारी” करके मनुष्य सात्त्विक-पवित्र आनंद पाने का जो प्रयत्न किया करता है यह उचित ही है। वरन् जो कुछ भी कहा जा चुका है, जो कुछ भी कहा जा रहा है और जो कुछ भी कहा जाएगा वह परमात्मा के वास्तविक वर्णन की तुलना में “अठे पूँछ, बठे पूँछ, मूढे कठे ?” जैसा समझा जायगा। “वाणी का विराम आ जाता है” यह कहने के लिए भी वाणी का ही सहारा लेना पड़ता है। इसलिए तो अनुभवीओं ने कहा है, “बरगद के पेड़ के नीचे, उसके तने के पास युवान गुरु और वृद्ध शिष्य बैठे हैं, गुरुजी मौन व्याख्यान दे रहे हैं और इससे शिष्यों के संशय छिन्न हो जाते हैं।”

जीव, जगत और जगदीश्वर के अर्थात् पुरुष, प्रकृति एवं परमेश्वर के जो अधिक से अधिक समझ पाये हों केवल वे ही यह कहने की हिंमत कर सके कि—

नेति, नेति, नेति

अनाहत नाद आदि ध्वनि का बीज है।

महाप्रलय के समय स्थूल जगत क्रमशः लय होता होता आखिर वह संपूर्ण लय-प्रलय के प्राप्त हो जाता है—पूरा सूक्ष्म हो जाता है। श्री पतंजलिने इस अवस्था को अलिंग अवस्था कहा है। महाप्रलय का समय पूरा होने पर अर्थात् अलिंग अवस्था पूरी होने पर, याने त्रिगुण की साम्यावस्था पूरी होने पर अर्थात् सूक्ष्म अवस्था का समय पूरा होने पर स्थूल जगत के नवसर्जन का जो पहला स्फोट-विस्फोट होता है वह विश्व का आदि ध्वनि है और उस समय की उसकी आकृति जो बनी वही विश्व की आदि आकृति। आकृति पैदा होने के कारण ध्वनि हुआ; या ध्वनि हो जाने से आकृति बनी, या दोनों एकसाथ अस्तित्व में आईं इस सम्बन्ध में जो भी दिमाग में बैठे, वह मान लेना। अस्तु।

ये आदि-ध्वनि और आदि आकृति जो हैं वे ही प्रणव ध्वनि और प्रणव आकृति हैं । वर्तमान विश्व के सभी स्थूल-सूक्ष्म स्वरूप ही इन दोनों के विकसित-वर्धित रूप हैं । इसलिए ये दोनों— आदि आकृति और आदि ध्वनि—वर्तमान विश्व की तमाम आकृतियाँ में और ध्वनियों में अनुस्यूत रीत से जुड़ी हैं । वृक्ष में बीज जिस तरह विकसित और रूपांतरित होकर रहता है उसी तरह प्रत्येक शरीर में भी ये दोनों बीज के रूप में रहती हैं ।

मनुष्य शरीर में बीज के रूप में स्थित वह ध्वनि अनाहत नाद के नाम से पुकारा जाता है । अनाहत नाद का अर्थ आहत-टकर-आघात लगे बिना उत्पन्न ध्वनि-नाद । इस ध्वनि का अनुभव करने के लिए अलग-अलग साधनाएँ-युक्तियाँ जानकारोंने बताई हैं । इस ध्वनि के अलग-अलग प्रकार और अलग-अलग फलों के बारे में ग्रंथों में वर्णन पाये जाते हैं । ये ध्वनियाँ बहुत कर्णमधुर होती हैं और लगातार होती रहती हैं ।

निम्नलिखित श्लोक में अनाहत नाद की बहुत बड़ी महत्ता दर्शायी गयी है—

इन्द्रियाणां मनो नाथो, मनो नाथस्तु मारुतः ।
मारुतस्य लयो नाथः, स लयो नादमाश्रितः ॥

अर्थ :- इन्द्रियाँ मन के कावू में हैं, मन मारुत-पवन के कावू में है, मारुत लय के कावू में है और लय नाद के आश्रित है अर्थात् अनाहत नाद के कावू में है ।

योगतारावली में श्री शंकराचार्यजी महाराज भी नाद की प्रशंसा मुक्त कंठ से इस प्रकार करते हैं ।

चित्त को ब्रह्म में लीन करने के लिए सवालाख प्रकार के लय अर्थात् ध्यान सदाशिव ने कहे हैं; उनमें से समाधि को देनेवाले नादानुसंधानरूप ध्यान को ही हम अधिक मान्य करते हैं । रेचक, पूरक और कुंभक प्राणायामों से सभी नाडियाँ शुद्ध हो जाती हैं तब शरीर में अनाहत नाद का ध्वनि प्रकट होता है ।

परमात्मा अति सूक्ष्म होने से सर्वव्यापक है ।

हम जैसे कर्म करते हैं वैसे फल पाते हैं । फल देनेवाला अवश्य कोई तत्त्व है । वह अलग अलग नाम से पुकारा जाता है । यहाँ हम उन्हें परमात्मा कहेंगे । कर्म का फल देने की उनकी रीत स्थूल नहीं । केवल उनकी मौजूदगी से यथायोग्य कर्मफल मिलते रहते हैं ।

परमात्मा अच्छे-बुरे कर्मों के अच्छे-बुरे फल दे सकते हैं क्योंकि उन्हें सब कर्मों का पता लग जाता है । उन्हें पता लगाने का कारण यह है कि वे सर्वज्ञ हैं; सर्वज्ञ होने का कारण यह है कि वे सर्वव्यापक हैं । परमात्मा सर्वव्यापक होने का कारण क्या है ?

क्योंकि—परमात्मा अत्यंत सूक्ष्म हैं; ब्रह्मांड का कोई भी पदार्थ परमात्मा के समान सूक्ष्म नहीं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश क्रमशः एक से एक अधिक सूक्ष्म है । इन पाँचों में आकाश अधिक सूक्ष्म है । इस वजह उसका व्याप भी अधिक है । एक सेर जल का व्याप-विस्तार बहुत मर्यादित होता है, परन्तु वह भाप के रूप में जब सूक्ष्म बनता है तब व्यापकता बहुत बढ़ जाती है । पदार्थ जितना सूक्ष्म अधिक उतने उसके विस्तार और शक्ति अधिक । आधुनिक विज्ञान भी इस बात का समर्थन करता है ।

परमात्मा वर्णनातीत-रूपनातीत सूक्ष्म हैं । इसलिए उन्हें निराकार अर्थात् किसी भी प्रकार के स्थूल आकार रहित कहे जाते हैं । यदि हम यह कहें कि अगर अस्तित्व है तो उसका आकार भी होना जरूरी है, तो परमात्मा के आकार को दिव्य आकार-अलौकिक आकार कह सकते हैं । और फिर यह कहना अनुचित नहीं कि दिव्य आकार का—अलौकिक आकार का अनुभव अलौकिक एवं दिव्य समझ के द्वारा ही हो सकता है ।

श्री गुरुअष्टक

पू. पा. शंकराचार्य विरचित

(हिन्दी भावानुवाद—योगभिक्षु)

धन, पत्नि, पुत्र; पौत्रादि सर्व;
 गृह बांधवादि, मिले निखर्ब;
 पर जो लगा मन, न गुरु चरणों में;
 तो क्या पाया ? भटका, भवरणों में ।
 कंठस्थ विद्या, वेदादि शास्त्र;
 गद्य, सुपद्य; कविता सामर्थ्य; पर जो...
 विदेशों में मान्य, स्वदेश में धन्य;
 जीविका पवित्र, सदाचारी नित्य; पर जो....
 धरातल के भूप, भूपालवृंद;
 सेवित् हैं जिसके, पादारविंद; पर जो....
 न भोगों में—योगों में, न राज्य सुखों में;
 मन न लगा हो, कभी काम सुखों में; पर जो....
 यशदान, गुणगान; फैले दिगंतों में;
 जग-वस्तु सर्व, हो प्राप्त करों में; पर जो...
 बन और गृह को, समझे समान;
 मन और देह से, चाहे विराम; पर जो....
 महामूल्य रत्नों की, प्राप्ति हो जाय;
 कामोपमोग, मिले दिन रात; पर जो...

भिस गुरुअष्टक का, जो करेगा पाठ;
 और गुरुचरणों में, लगा रहे दिन-रात;
 त्यागी, गृहस्थी, ब्रह्मचारी; हो चाहे भूपाल;
 चारों पदारथ पायेगा, निश्चित है यह बात।

हमारे अन्य गुजराती प्रकाशन

१	गुरुमहिमा (योगरहस्यों से भरपूर)	रु. १५-००
२	मुक्ता (योगदर्शन का समाधिपाद)	.. १५-००
३	शांता (योगदर्शन का साधनपाद)	.. १५-००
४	मारा गुरुदेव (जीवन और साधना की कुछ अनुभूतियाँ)	.. १२-००
५	श्रीश्वर केने कहीं शकाय ? (असी पुस्तक का गुजराती)	.. ४-००
६	मैत्री (गुजराती) (विश्वशांति का योगरहस्य)	.. २-००
७	मैत्री (अंग्रेजी)	.. २-५०
८	श्रीश्वर दर्शन (दक्षिण भारत और अमरिका की यात्रा)	.. ४-००
९	सत्संग पराग (चुने हुए सुवाक्य)	.. २-००
१०	निर्झर झरुं के गोवथी (गुजराती) (विश्वशांति के गुप्त कारणों का प्रकटीकरण)	.. ५-००
११	निर्झर झरुं के गोवथी (अंग्रेजी)	.. ७-००
१२	.. (हिन्दी और अंग्रेजी)	.. १०-००
१३	गुरुपूर्णमा (गुरुपूर्णमा के महिमा की अद्वितीय पुस्तिका)	.. २-५०
१४	ओझीअेस्ट ओझ रीअलाओझेशन (अंग्रेजी) (जीवनसंबलरूप कुछ लघु लेख)	.. ५-००
१५	ओम्परिवार (जीवनसंबलरूप कुछ लघु लेख)	.. १-००
१६	ध्यान शा माटे ? (गुजराती और अंग्रेजी)	.. ३-००
१७	ओम् के सुंदर, सुरेख चित्र	.. २-००



प्राप्तिस्थान :

१. १/अ, पलियडनगर सोसायटी,
सेंट झेवियर्स स्कूल रोड,
नारणपुरा,
अहमदाबाद-१३.

२. कृति प्रकाशन
ब्राह्मीन ट्रस्ट बिल्डींग,
१ ले माल, वी.पी. रोड,
वीरमगाम-३८२ १५०.